पंचकर्म

(भाग - २)

भगवान लकुलीशजी

योग

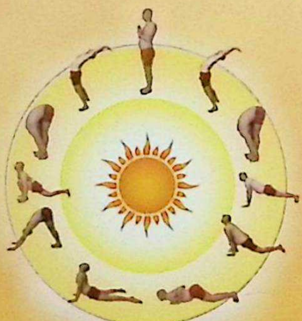

सूर्य नमस्कार

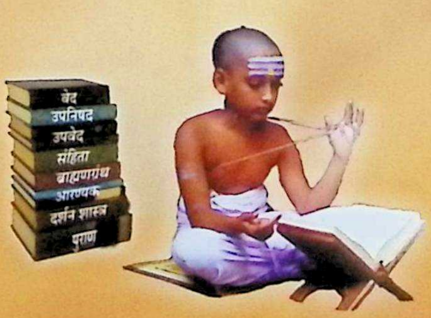

शास्त्र अभ्यास

स्वामी प्रितम मुनि

लकुलीश सनातन संस्कृति प्रबोधन अभियान

भगवान लकुलीशजी

शिव संकल्प
सनातन संस्कृति
पुनरुत्थान

भगवान लकुलीशजी के
आदेश अनुसार
नैतिकता, सात्त्विकता,
आध्यात्मिकता के
प्रसार द्वारा
सनातन संस्कृति
पुनरुत्थान से विश्व में
शांति, नीति, एकता की
स्थापना करना।

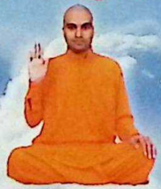

स्वामी प्रितम मुनिजी

सनातन संस्कृति प्रसार हेतु चार मंडली की रचना

पश्चिम मंडली	उत्तर मंडली	पूर्व मंडली	दक्षिण मंडली
पश्चिम भारत उत्तर अमरीका दक्षिण अमरीका	उत्तर भारत युरोपीयन देश रशियन देश	पूर्व भारत पूर्व दक्षिण एशिया ऑस्ट्रेलियन देश	दक्षिण भारत अफ्रिकन देश मध्य पूर्व एशिया

योगर्षिजी ब्रह्मचारी

शांभवी मैया

सत्यमजी परित्यागी

दिव्येशजी ब्रह्मचारी

पश्चिम मंडली

गुजरात राज्य

प्रभवानंदजी
वानप्रस्थी

स्वामी
रुद्रानंदजी

जगदीशानंदजी
वानप्रस्थी

गुणीतानंदजी
वानप्रस्थी

महाकौशल मध्य प्रदेश

परमानंदजी
वानप्रस्थी

उत्तर मंडली

स्वामी
सच्चिदानंदजी

पंचकर्म - २

(योग, पंच उपदेश)

स्वामी प्रितम मुनि

पंचकर्म - २

(योग, पंच उपदेश)

सभी अधिकार प्रकाशक के आधिन

प्रकाशक
© लकुलीश सनातन संस्कृति प्रबोधन अभियान

मुद्रण - लिपी प्रेस

संस्करण - प्रथम, दिसम्बर २०२२
मार्गशीर्ष कृष्ण चतुर्थी (विक्रम संवत २०७९)

प्रत - १०००

शुल्क - १००/-

<u>पुस्तक प्रकाशक एवं वितरक</u>
लकुलीश सनातन संस्कृति प्रबोधन अभियान
लकुलीशधाम, प्रितमपुरम, कायावरोहण, वडोदरा, गुजरात - ३९१२२०
संपर्क - ९९९८०३८८९२,९९२५२२५६४८

अनुक्रमणिका

वैदिक प्रार्थना		–	०७
योग	योग शब्द परिचय	–	०८
	पूर्णयोग – योग नाम भेद	–	०८
	योग के अलग अलग नाम	–	०८
	अष्टांगयोग के अंगो का परिचय	–	०८
	यम	–	०८
	नियम	–	०९
	योगासन परिचय	–	११
	आसन शास्त्रोक्त	–	१३
	योगासन अभ्यास	–	१४
बैठकर करने के आसनो का सरल अभ्यास			
(१)	स्वस्तिकासन	–	१४
(२)	अर्धपद्मासन	–	१४
(३)	वज्रासन	–	१४
(४)	सिंह शावासन	–	१५
(५)	व्यासासन	–	१५
(६)	गौमुखासन	–	१५
(७)	वीरासन	–	१५
(८)	मरिचयासन	–	१६
(९)	अश्वारोहासन	–	१६
(१०)	नरसिंहासन	–	१७
बैठकर करने के आसनो का कठीन अभ्यास			
(११)	पद्मासन	–	१७
(१२)	अर्धमत्स्येन्द्रासन	–	१७
(१३)	पश्चिमोत्तानासन	–	१८
(१४)	कार्मूकासन	–	१८
(१५)	पवन मुक्तासन	–	१८
(१६)	निमग्न वज्रासन	–	१८
(१७)	भद्रासन	–	१९
(१८)	अधोमुखी श्वानासन	–	१९
(१९)	उष्ट्रासन	–	१९
सो कर करने के आसनो का सरल अभ्यास			

अनुक्रमणिका

(२०) शवासन – २०
(२१) पद्मदोलासन – २०
(२२) द्वि पाद उत्तान पादासन – २०
(२३) सूप्त पवन मुक्तासन – २१
(२४) सेतुकासन – २१
(२५) सुप्त वज्रासन – २१
(२६) वक्रकटि आसन – २१
सो कर करने के आसनो का कठीन अभ्यास
(२७) हलासन – २२
(२८) अर्ध चक्रासन – २२
(२९) सर्वांगासन – २३
(३०) मत्स्यासन – २३
पेट के बल सो कर करने के आसनो का सरल अभ्यास
(३१) मकरासन – २३
(३२) भूजंगासन – २४
(३३) बालासन – २४
पेट के बल सो कर करने के आसनो का कठीन अभ्यास
(३४) शलभासन – २४
(३५) अर्ध धनुरासन – २५
खड़े रहकर करने के आसनो के सरल अभ्यास
(३६) ताडासन – २५
(३७) त्रिकोणासन – २५
(३८) अर्ध चंद्रासन – २६
(३९) पृष्ठवंशासन – २६
खड़े रहकर करने के आसनो के कठीन अभ्यास
(४०) पादतल हस्तासन – २६
(४१) अनुवृत्तासन – २७
(४२) गरुडासन – २७
संतुलन करने के आसनो का सरल अभ्यास
(४३) उत्कटासन – २७
(४४) पादांगुष्ठ स्थिरासन – २७
(४५) ज्ञानासन – २८

(४६) ध्रुवासन – २८

संतुलन करने के आसनो का कठीन अभ्यास

(४७) एकपाद हस्त मार्जारासन – २८

(४८) अर्ध शिर्षासन – २९

(४९) शिर्षासन – २९

(५०) नटराजासन – २९

सूर्यनमस्कार – ३०

प्राणायाम

दस प्राणों का क्षेत्र और कार्य – ३५

प्राणायाम का महत्त्व – ३६

शास्त्रोक्त प्राणायाम – ३६

प्राणायाम में सावधानी – ३८

कुंभक के प्रकार – ३९

योगासन प्राणायामना अभ्यास सम्बन्धित सूचना और जानकारी – ४०

प्राणायाम के प्रकार – ४१

अनुलोम विलोम प्राणायाम – ४२

सूर्य भेदन प्राणायाम – ४३

उज्जाई प्राणायाम – ४३

सीत्कारी प्राणायाम – ४४

शीतली प्राणायाम – ४५

भस्त्रिका प्राणायाम – ४५

भ्रामरी प्राणायाम – ४६

चंद्रभेदन प्राणायाम – ४७

मूर्छा प्राणायाम – ४७

प्लाविनी कुंभक – ४८

बंध मूलबंध – ४९

जालंधरबंध – ५०

उड्डियानबंध – ५१

बंध - वैज्ञानिक अभिगम – ५३

मुद्रा शास्त्रो में मुद्रा की संख्या – ५४

विपरीत करणीमुद्रा – ५४

तडागी मुद्रा – ५५

अनुक्रमणिका

	मांडुकी मुद्रा	-	५६
	हस्तमुद्रा	-	५७
षट्कर्म	नेति	-	६१
	कपालभाति	-	६४
	धौति	-	६५
	बस्ति	-	६७
	त्राटक	-	६८
	नौलि	-	६९
नाड़ी		-	७१
प्रत्याहार		-	७२
धारणा		-	७२
ध्यान		-	७३
समाधि		-	७३
सृष्टि रचना के तत्त्व		-	७४
शास्त्र परिचय		-	७५
पंच उपदेश			
	(१) सनातन धर्म	-	७६
	(२) कर्मनो सिद्धांत	-	७९
	(३) कर्म ज्ञान भक्ति	-	७९
	(४) चार आश्रम	-	८१
	(५) पुरुषार्थ चतुष्टय	-	८२
संस्था परिचय			
	भगवान शिवजी के अठ्ठाइसवें अवतार भगवान लकुलीश जी	-	८८
	ब्रह्मर्षि विश्वामित्र जी द्वारा स्थापित ब्रह्मेश्वर योग मंदिर कायावरोहण	-	९०
	लकुलीश जी मूर्ति स्वरुप वर्णन	-	९०
	ऋषिओ द्वारा लकुलीश जी की पुराणोक्त वंदना	-	९२
	शिवावतार भगवान लकुलीशजी के शिष्य पूज्य प्रितम मुनिजी	-	९३
	भगवान लकुलीश जी की आरती	-	९७
	संस्कृति प्रबोधक संकल्प गान	-	९८

वैदिक प्रार्थना

ॐ नमः शिवाय गुरुवे सच्चिदानंदमूर्तये ।
नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमो नमः ॥

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

असतो मा सद्गमय ।
तमसो मा ज्योतिर्गमय ।
मृत्योर्मा अमृतं गमय ।

सह नाववतु, सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै
तेजस्विनावधितमस्तु मा विद्विषावहै
ॐ शांतिः शांति शांति

गुरुब्रह्मा गुरुविष्णु गुरुदेवो महेश्वरः ।
गुरुसाक्षात् परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

<u>सर्व मंगलकी प्रार्थना</u>

ॐ सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भाग्भवेत् ॥

ॐ शांति : शांतिः शांतिः ।

योग शब्द परिचय

योग शब्द "**युज्**" धातु के बाद करण और भाववाच्य में "**घञ्**" प्रत्यय लगाने से बनता हैं। "**युज्**" धातु का अर्थ है समाधि। "समाधि" शब्द का अर्थ है सम्यक् प्रकार से भगवान् के साथ युक्त हो जाना, मिल जाना। जीव का कामना, वासना, आसक्ति, संस्कार आदि सभी प्रकार की आगन्तुक मलिनता को दूर कर, स्व स्वरुप में प्रतिष्ठित होकर भगवान में मिल जाना योग कहलाता हैं।

पूर्णयोगः योग नाम भेद : एक ही योग समयान्तर से विधि भेद से साधकों द्वारा अनेक नामों से प्रचलित रहा हैं। किन्तु अनेक भिन्न विधि और नामों से योग अनेक नहीं हैं अपितु वह सभी नामों, विधि, भेद एक ही योग साधना के अलग अलग मुकाम पर आने वाली विधविध योगक्रिया और परिणाम हैं। योग एक ही है। उसे सनातन अवस्था देने वाला **सनातन योग** या दिव्य देह में स्थित करने वाला **दिव्ययोग** या सीमितता से असीमितता में स्थित कराने वाला **पूर्णयोग** कह सकते है। हम उसे पूर्णयोग कहेंगे क्योंकि उसके अंतर्गत योग के सभी अंग, रुप, परिणाम समाविष्ट हैं।

योग के अलग अलग नाम : अलग अलग विधि व उससे प्राप्त परिणामों के अनुसार हम योग को नीचे दर्शाये नामों से जानते है। मंत्रयोग, कर्मयोग, तंत्रयोग, हठयोग, लययोग, राजयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग, स्वरयोग, नादयोग इत्यादि। महर्षि पतंजलिने योग को आठ अंगो में विभाजित किया जिसे अष्टांगयोग कहते है।

अष्टांगयोग के अंगो का परिचय : महर्षि पतंजलि ने योगसूत्र के "**साधनपाद**" के **२९वें** सूत्र में कहा है –

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽङ्ष्टावङ्गानि।

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि योग के आठ अंग है।

हर एक साधना पद्धति में साधना के फलस्वरुप हमें स्थिति या सिद्धि प्राप्त होती हैं। अष्टांग योग की साधना पद्धति में प्राप्त फलश्रृति को इस प्रकार कह सकते हैं।

यम → नियम → आसन → प्राणायाम → प्रत्याहार → धारणा
मुक्ति ← ज्ञान ← समाधि ← सिद्धि ← ध्यान

१. यम : यम यानी "**अन्य से व्यवहार शुद्धि के आचार या नियम।**" यम पांच हैं। योगी का अन्य व्यक्तियों के साथ व्यवहार शुद्धि के लिए आचार अर्थात् यम। जो विशेषतः नैतिक और भावनात्मक है। उसका पालन समाज धर्म है।

अहिंसासत्यास्तये ब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः

(१)अहिंसा (२)सत्य (३)अस्तेय (४)ब्रह्मचर्य (५)अपरिग्रह

(१) अहिंसा - "धर्मनीति अनुसार अन्य को कष्ट या पीड़ा न देना।" धर्मनीति अनुसार मन, वचन, कर्म से अन्य को कष्ट न देना और अन्य को हानिकर भाव का सर्वथा त्याग करना अहिंसा है।

(२) सत्य - "धर्मनीति अनुसार जैसे का वैसे व्यक्त करना।" धर्मनीति अनुसार मन, वचन, कर्म से कोई भी घटना या व्यवहार को यथावत् किंतु विवेक पूर्वक सर्व हितार्थ शब्दों में व्यक्त करना।

(३) अस्तेय - "धर्मनीति अनुसार अन्य की मालिकी का कुछ भी छीन कर या चोरी करके नहीं लेना।" स्तेय यानी अनधिकृत पदार्थ को ले लेना। अस्तेय यानी धर्मनीति अनुसार मन, वचन और कर्म से स्तेय का त्याग करना यानी अन्य की मालिकी का कुछ भी उससे छुपा कर या उससे छीन कर नहीं लेना।

(४) ब्रह्मचर्य - "ईश्वरमय बनने के लिये अपनी उर्जाओं को व्यय न होने देना।" ब्रह्मचर्य यानी ऐसा आचरण की जिसके द्वारा ईश्वर की निकटता अधिक से अधिक प्राप्त हो और अपनी ऊर्जाओं का क्षय न हो।

(५) अपरिग्रह - "आवश्यकता से अधिक संग्रह न करना।" "परिग्रह यानी संग्रह करना।" अपरिग्रह यानी आवश्यकता पूर्ति के लिए धर्मनीति अनुसार जो कुछ भी प्राप्त हो उसका मन, वचन, कर्म से आवश्यकता पूर्ति से अधिक संग्रह न करना और आवश्यकता से अधिक प्राप्ति के भाव को या प्राप्ति को टिकाए रखने के भाव को प्राप्त करने के संकल्प का भी त्याग करना।

२. नियम : नियम यानी **"स्वजीवन शुद्धि के आचार या नियम।"** योगी के स्वजीवन शुद्धि के लिए आचार यानी "नियम।" उस में विशेषत: रचनात्मक, क्रियात्मकता और जीवन अनुशासन है। उसका पालन व्यक्ति धर्म है। नियम पाँच है।

शौचसन्तोषतपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः।

(१)शौच (२)संतोष (३)तप (४)स्वाध्याय (५)ईश्वरप्रणिधान

(१) शौच - "शौच यानी तन-मन की शुद्धि, पवित्रता।" शौच यानी शरीर और मन को ऐसे शुद्ध, पवित्र करना कि जो अध्यात्म यात्रा के लिए उपयुक्त बन सकें।

(२) संतोष - "धर्मनीति अनुसार प्राप्त परिस्थिति से संतुष्ट रहना।" धर्मनीति अनुसार पुरुषार्थ से प्राप्त फल या परिस्थिति को खुशी से स्वीकार कर, दु:ख, ग्लानि, व्यथा या लघुता के भाव या अहंकार भाव का त्याग कर शांत और प्रसन्न रहना संतोष है।

(३) तप - "निश्चित संकल्प की सफलता के लिए या स्वकल्याण के लिए पुरुषार्थ करना और उसकी प्रतिकूलताओं को विवेक से सहना।" प्रभुप्रेम से

स्वकल्याण के लिए पुरुषार्थ करना एवं तन मन की प्रतिकूलताओं को विवेक पूर्वक सहना तप है।

(४) स्वाध्याय – "स्वाध्याय यानी स्वकल्याण हेतु स्व का अध्ययन और स्व की साधना।" स्व का अध्ययन यानी अपने आत्मस्वरूप को आत्म दर्शन द्वारा जानने के लिए उपयोगी शास्त्र अध्ययन, चिंतन, मनन और प्रणव इत्यादि मंत्रजप जैसे कर्म जो स्वदर्शन में सहयोगी हो, उसका अभ्यास स्वाध्याय है।

(५) ईश्वरप्रणिधान – "ईश्वरप्रणिधान यानी ईश्वर को निष्कामभाव से समर्पण करना।" "प्रण" यानी प्रतिज्ञा। मन, वचन, कर्म से सिर्फ ईश्वरीय न्याय के अनुसार निष्काम भाव से कर्म करना और अपने कर्म और कर्मफल के सहित ईश्वर को समर्पण करना।

३. आसन : स्थिरसुखमासनम्।

कष्ट रहित, सुखपूर्वक स्थिर बैठक जिसे आसन कहते है।

४. प्राणायाम : तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः।

"साँसो के नियमन को प्राणायाम कहते हैं।" प्राण (जैविक) वायु पर नियंत्रण स्थापित करने की कला को प्राणायाम कहते है।

५. प्रत्याहार : स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्य स्वरुपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः।

"बहिर्मुखी इन्द्रियों को अंतर्मुखी करना।" हमारी इच्छा, कामना, संकल्प से विचारों में भटकते मन को शांत कर ईश्वर में जोड़ना। योगी प्रत्याहार के अभ्यास द्वारा अपनी इन्द्रियों को नियंत्रित कर स्वयं को ध्यान साधना के लिए सक्षम बनाता हैं।

६. धारणा : देशबन्धश्चित्तस्य धारणा।

"चित्त को किसी निश्चित आकार या ध्येय में केन्द्रित करने का प्रयत्न करना।" धारणा कोई निश्चित ध्येय, गुण, उद्देश्य, रुप, उर्जा, दैवी शक्ति की ओर चित्त की अभिमुखता है।

७. ध्यान : तत्र प्रत्यैकतानता ध्यानम्।

"चित्त का किसी निश्चित आकार या ध्येय में केन्द्रित होना।"

८. समाधि : स्वरुपशून्यमिव समाधिः।

"ध्यान में केन्द्रित हो कर हम स्वयं को और ध्यान क्रिया को भूल जाये और ध्येय में लीन हो जाये।"

योग को मुख्यतः दो वर्गो में विभाजित किया जाता हैं।

(१) बहिरंग योग (२) अंतरंग योग

(१) बहिरंग योग : योग के प्रथम पांच अंग **यम, नियम, आसन, प्राणायाम और**

प्रत्याहार बहिरंग योग कहलाते हैं। प्रत्याहार बहिरंग एवं अंतरंग को जोड़ती कड़ीरुप हैं।
(२) अंतरंग योग : योग के अंतिम तीन अंग **धारणा, ध्यान एवं समाधि को अंतरंग योग कहा गया हैं।** बहिरंग योग को हठयोग या पूर्वार्ध भी कहा जाता हैं। जब कि अंतरंग योग को राजयोग या उत्तरार्ध कहा जाता हैं।

योगासन परिचय

आसन शब्द का सरल अर्थ है "बैठना"। योग में आसन का अर्थ बतलाते हुए महर्षि पतंजली ने योगसूत्र में कहा है।

स्थिरसुखमासनम् ।

कष्ट रहित, सूखपूर्वक की स्थिर बैठक जिसे आसन कहते है। साथ ही आसन एक विशिष्ट शारीरिक व्यवस्था भी है जो प्राण के संचार को नियंत्रित करता है एवं अध्यात्म लक्षी हेतुओ को भी सिद्ध करने में सहायभूत होता है।

आसन महत्व : हठयोग प्रदिपिका में आसन का महत्व समजाते हुए कहा है;

कुर्यात्तदासनं स्थैर्यमारोग्यं चाङ्गलाघवम्।

आसन करने से साधक को स्थिरता, आरोग्य और अंग लाघवत्व (हलकापन) सूक्ष्मता की प्राप्ति होती है।

घेरंड संहिता अनुसार : **आसनेन भवेद्दृढम्।**

आसन से दृढ़ता सिद्ध होती है।

आसन भेद एवं संख्या : आसन का नामकरण ऋषि मुनियों की साधना में उद्भूत होती अंग भंगीमा से एवं पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, पर्वत-नदी झरनें आदि के आकार व गुण इत्यादि को लक्ष में रखकर किया गया है।

भिन्न-भिन्न शास्त्रों में आसनो की संख्या अलग-अलग बताई गई है।

घेरण्ड संहिता के अनुसार

आसनानि समस्तानि यावन्तो जीवन्तवः ।
चतुरशीतिलक्षाणि शिवेन कथितानि च ॥
तेषां मध्ये विशिष्टानि षोडशोनं शतं कृतम् ।
तेषां मध्ये मर्त्यलोके द्वात्रिंशदासनं शुभम् ॥

समस्त आसन उतने ही है जितने संसार में जीव-जन्तु है। प्राचीन समय में शिवजी ने उनकी संख्या ८४ लाख कही है। जिन में ८४ आसन विशेष कह सकते है। उस में भी मृत्युलोक में बत्तीस आसन विशेष शुभकर है।

आयु भेद अनुसार योगासनों का अभ्यास

आयुभेद	विभाग	कैसे आसन करें ?
३ से ७ साल	बच्चे	सहजता से हो सके
८ से ११ साल	कुमार	सरलता से हो सके
१२ से १४ साल	तरुण	मध्यम प्रयत्न से हो सके
१५ से ४५ साल	युवान	कठिन पुरूषार्थ से हो सके
४६ से ६५ साल	प्रौढ़	मध्यम प्रयत्न से हो सके
६६ से ज्यादा	वृद्ध	सरलता से हो सके

आसन शास्त्रोक्त

आसन की स्थिति सुदृढ़ होनी चाहिये। आसन में किसी भी प्रकार की असुविधा या किसी प्रकार के कष्ट या तनाव का अनुभव नहीं होना चाहिये, जिस से योगासन में लंबे समय तक सहजता से बैठ सके।

ध्यानोपयोगी आसन में मस्तक, गरदन और मेरुदंड़ एक सीधी रेखा में होने चाहिये। ध्यान हेतु मुख्यत: पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख होकर बैठना चाहिए। क्योंकि सूर्योदय से पूर्व में से तथा उत्तरीय ध्रुव से उत्तर में से विशिष्ट विद्युत चुंबकीय तरंगे प्रवाहित होती रहती है। योगाभ्यास के लिए जमीन पर किसी आसन के बिना बैठना नहीं चाहिये क्योंकि भूमि विद्युत ग्रहण करती है शरीर के अंगों को जमीन से स्पर्श होने से उर्जा का क्षय हो सकता है, इसलिए जमीन पर विद्युत अवाहक आसन दर्भ या ऊन का आसन या दरी बिछाकर योगाभ्यास करना चाहिये। जब आसन के दौरान दैहिक प्रणाली संपूर्ण रीती से तनावमुक्त रहती है तब शरीर में उर्जा का प्रवाह निर्बाध गति से होने लगता है।

किसी निश्चित आसन के नियमित अभ्यास से शरीर उस स्थिति में सहजता से एवं किसी भी प्रकार की प्रतिकूलता अनुभूत किये बिना सुख पूर्वक लंबे समय तक बैठ सकता है और लक्ष्य में एकाग्र हुआ मन शारीरिक असुविधाओं के प्रति भटकता नहीं। आसन के सफल अभ्यास का प्रथम लक्षण शरीर का हलका (लाघव) होना है जिसके कारण अंगो के उपर उठने की (हलकापना की और ऊर्ध्व गमन की) अनुभूति होती है। यह स्थिति आसन की पूर्ण सिद्धि के बाद ही आती है। आसन के अभ्यास से सुख तथा प्रसन्नता की भी अनुभूति होती है।

आसन के लिए सहजता आवश्यक है, जो आसन के नियमित अभ्यास से प्रकटती है। आसन के अभ्यास दौरान मन की तनाव से मुक्ति आसन सिद्धि का लक्षण है। अपने मन को असीमता पर एकाग्र करने से उसके अनेक गुणों की प्राप्ति होती है, असीमता की धारणा आसन को स्थिरता प्रदान करती है, संवेगो को सुव्यवस्थित करती है। आसन और प्राणायाम के अभ्यास से जब प्राण संतुलित अवस्था में होते है, तब द्वन्द्व की स्थिति क्षीण होने लगती है, प्राणों से भूख, प्यास, ठंडी गरमी अनुभूत होती है। प्राणायाम के अभ्यास से नियंत्रित हुए शरीर और प्राण के कारण भूख, प्यास, निन्द्रा, ठंडी, गरमी, द्वन्द्व पर आंशिक विजय प्राप्त होता है एवं प्राण, मन और इन्द्रियों का सामंजस्य होने से ध्यान, समाधि के लिए अनुकूलता सर्जीत होती है।

योगासन अभ्यास

बैठकर करने के आसनों का सरल अभ्यास

१. स्वस्तिकासन : आसन पर बैठकर पैर आगे की तरफ फेलाएँ। बाये पैर को घुंटने से मोड़कर बाये पैर का तलवा दाहिनी जंघा के मूल के पास रखे। दाहिने घुंटने को मोड़कर दाहिने पंजे को बाये जंघा और पींडली के नीचे से इस प्रकार बाहर निकाले जिससे बाये पैर का सिर्फ अंगुठा और दाहिने पैर की सिर्फ एड़ी बाहर दिखेगी। दोनों हाथों से ज्ञान मुद्रा बनाकर घुंटनों पर स्थापित करें, आँखें बंध कर इष्ट स्मरण करें।

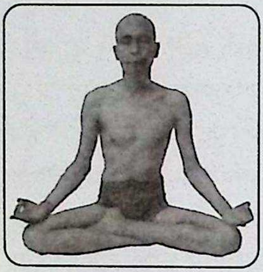

लाभ : शरीर और मन को विश्राम देता है। रक्त परीभ्रमण सुचारु रुप से होता है। कमर दर्द पंजे और पींडलीओं के दर्द में राहत मिलती है।

२. अर्धपद्मासन : आसन पर बैठ कर दोनो पैर सीधे फैलाए। बाँए पैर की एड़ी को दाहिने नितंब के नीचे रखें और दाहिने पैर की एड़ी को बाँये उदर के नीचले हिस्से को स्पर्श करते हुए बाँयी जंघा के मूल पर रखें। दोंनो हथेलीयों से ज्ञानमुद्रा बनाकर घूंटनों पर स्थापित करें। सीना, गरदन, पीठ सीधी रेखा में रखें। दीर्घ श्वसन का अभ्यास करें।

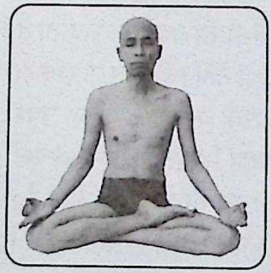

लाभ : शरीर स्थिर बनता है। मानसिक एकाग्रता प्राप्त होती है।

३. वज्रासन : आसन पर बैठ कर सामने की ओर दोंनो पैर फैलाए। बाँए घूंटने को मोड़ कर बाँयी एड़ी बाँए नितंब के नीचे और पंजा पीछे की तरफ खुला रखें। इसी प्रकार दाहिनी एड़ी दाहिने नितंब नीचे और पंजा पीछे की तरफ खुला रखें। दोंनो पैरो के अंगुठे एक दूसरे को स्पर्श करते हुए रखें। दोंनो हाथ घूंटनों पर स्थापित करें। यह स्थिति में दीर्घ श्वसन करें।

लाभ : शरीर में स्थित वज्र नामक नाड़ी पर अत्याधिक प्रभाव पड़ता है जो पाचन क्षमता के साथ जुड़ी हुई है। जिससे पाचन क्षमता बढ़ती है। पैरो के जोड़ मजबूत बनते है। कमर सुदृढ़ बनती है। गॅस सम्बन्धित तकलीफ में राहत देता है।

४. सिंह शावासन : आसन पर वज्रासन बनाकर बैठे। दोनो हाथों को घुटनो पर रखें। आँखे बन्द कर दीर्घ पूरक करें। पूरक के बाद शीघ्र रेचक करते हुए शेर की भाँति आँखे चौड़ी करें एवं जिह्वा बाहर निकाले। चहेरे पर रौद्र भाव लाए। पूरक करते हुए आँखे बंध कर के जिह्वा को मुँख में ले जाए।

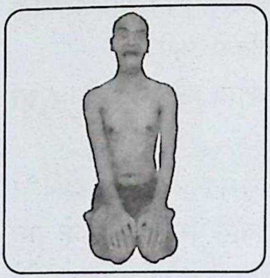

लाभ : निर्भयता का भाव प्रगट होता है। नेत्र तेजस्वी बनते है। थायरोइड और पेराथायरोइड के स्त्राव नियमित बनते है। आवाज़ स्पष्ट और सुमधुर बनती है।

५. व्यासासन : आसन पर बैठकर दोनों पैरों को सामने की तरफ फैलाए। बाँये पैर की एडी़ दाहिने नितंब के नीचे रखे। बाँया घुटना जमीन पर लगाएँ। दाहिने पैर को मोड़कर दाहिना घुटना बाँये घुटने पर रखे। बाँयी हथेली पर दाहिनी हथेली रखते हुए दोनों हाथो को घुटनों के उपर स्थपित करे। आंखे मूंद कर दीर्घ श्वास प्रश्वास का अभ्यास करें।

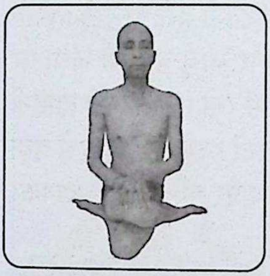

लाभ : आसन में स्थिरता बढ़ती है। पौरुष शक्ति में सहायता मिलती है। घुटनो एवं टखनो के दर्द में राहत मिलती है। एकग्रता बढ़ती है। मन शांत होता है। मणिपुर चक्र का ध्यान करना सरल बनता है।

६. गौमुखासन : आसन पर दोनों पैर सीधे रख कर बैठे। बाँया पैर मोड़ कर उसकी एड़ी दाहिने नितंब के नीचे रखें। दाहिना पैर मोड़ कर उसकी ऐड़ी बाँये पैर की बाहर की जंघा को लग कर रहे इस प्रकार रखें। दोनों हाथ घुटनों पर रखें। पूरक करते हुए दाहिना हाथ उठाकर मस्तक के पीछे ले जायें। बाँया हाथ कमर के पीछे से ले जायें। दोनों हाथों की अंगुलियाँ एक दूसरे से मिलाये। मस्तक गरदन तथा पीठ को सीधा रखें।

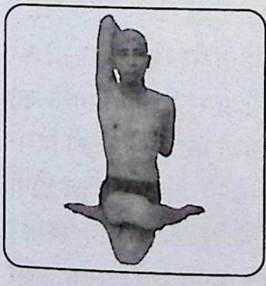

लाभ : वक्ष का विकास होता है। कमर के स्नायु मजबूत बनते है। सर्वाइकल, टेनिस एल्बो की समस्या में राहत मिलती है।

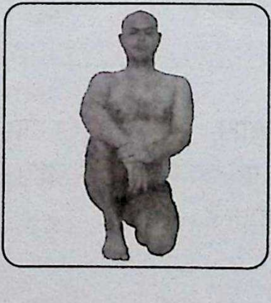

७. वीरासन : आसन पर पैर सीधे फैलाकर बैठे। दाहिना पैर मोड़कर उसकी एड़ी गुदास्थान के नीचे आए इस प्रकार बैठे पर बैठो। बाँए पैर को घुंटने से मोड़कर सीधा खडा रखे। बाँए हाथ

को कोहनी से मोड़कर बाँए घुटने पर रखें। दाहिने हाथ से बाये हाथ की कलाई पकड़े। आंखे मूंद कर पूरक करें। पूरक करते हुए शरीर को सीधा करे। पूरक के बाद संपूर्ण रेचक कर बाह्य कुंभक में मूलबंध का अभ्यास करे। मूलबंध छोड़ कर सामान्य स्थिति में आए।

लाभः भावनात्मक स्तर पर वीररस उत्पन्न करता है। साधक शौर्य को पाता है। सूक्ष्म आध्यात्मिक चेतना की परतें खुलती है।

८. मरिचयासन : इस आसन के लिए दोनों पैर आगे की तरफ सीधे फैलाकर बैठे। दोनों पैर के पंजे मिलाकर रखें। दाहिने पैर को बाँये पैर के घुटने के पास सीधा खडा रखें। बाँये पैर को सीधा ही रखे। दोनों हाथ को बाँये घुटने पर रखें। पूरक करते हुए शरीर को दाहिनी तरफ मोड़कर दाहिनी हथेली कमर के पीछे छ ईच जितनी दूरी पर रखें। बाँया हाथ कोहनी से मोड़े। बाँया कंधा और बाजू दाहिनी जंधा पर दबाये। बाँए हाथ को आशीर्वाद मुद्रा में रखे। गरदन को दाहिनी तरफ घुमाकर दृष्टी जमीन के समान रखें। आंतर कुभक में यथा क्षमता टीके रहे। रेचक करते हुए मूल स्थिति में वापस आए। हाथ पैर की स्थिति बदलकर आसन का अभ्यास फिर से करें।

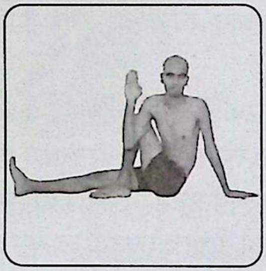

लाभ : इस आसन के अभ्यास द्वारा पेट तथा कमर के हिस्से की माँश पेशियाँ तथा अंगो को अच्छा व्यायाम मिलता है। कमर सुदृढ़ बनती है। चेतातंत्र सचेत बनता है। गरदन और कंधे मजबूत बनते है। हाथ पैर की माँश पेशियाँ मजबूत बनती है। गर्भाशय की सूजन तथा शुक्रग्रंथि की कमज़ोरी दूर करने में सहायक है।

९. अश्वारोहासन : आसन पर पैरों को सीधा फैलाकर बैठे। दाहिना पैर मोड़कर एड़ी को सीवनी से लगाकर रखे। बाँया पैर सीधा रखे। दोनों हाथो को घुटनो पर रखे। पूरक करते हुए दोनों हाथो को मस्तक की दिशा में सीधा उठाये। रेचक करते हुए कमर से आगे झुककर दोनों हाथो से घोड़े की लगाम की भाँती बाँये पैर के पंजे को पकडे। बाह्य कुंभक में क्षमतानुसार यह स्थिति बनाए रखे। पूरक करते हुए वापस मूल स्थिति में आये। पैरों की स्थिति बदल कर यह आवृत्ति पाँच बार दोहराए।

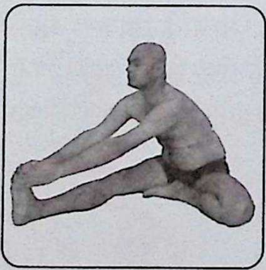

लाभ : मलावरोध दूर होता है। पेट व पेढु की तकलीफे दूर होती है। चेताएँ सतेज बनती है। सायेटीका के दर्द मे राहत मिलती है। मूलाधार की तरफ प्राण स्वाभाविक रुप से आकर्षित होता है।

१०. नरसिंहासन : इस आसन के लिये घुटनो पर बैठें। घुटने कंधो के समानान्तर खोलें।

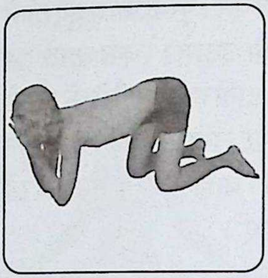

रेचक करते हुए पीठ सीधी रहे इस प्रकार कमर से आगे झुक कर दोनो कोहनियाँ जमीन पर रखें। हथेलियाँ आमने सामने मिलाकर अंगुलियों को खोलें। ठोड्डी को हथेली पर रखकर दबायें। पूरक कर मूल स्थिति में वापस आयें।

लाभः सर्वाइकल एवं अन्य गरदन की समस्या में राहत मिलती है। आंत्रपृच्छ की तकलीफ में राहत मिलती है। गैस, कब्ज़ तथा पेट की अन्य बीमारियों में फायदा होता है।

बैठ कर करने के आसनो का कठीन अभ्यास

१. पद्मासन : पद्मासन को आसनो का राजा कहा जाता है। यह आसन करने के लिए दोनों

पैरों को सीधा फैला कर बैठें। बाँये पैर को मोड़ कर उसका पंजा दाहिनी जंघा पर रखें। दाहिने पैर को मोड़ कर उसका पंजा बाँयी जंघा पर रखें। दोनो हाथो से ज्ञान मुद्रा बना कर घुटनो पर रखें। शरीर एक सीधी रेखा में रखें। आंखे बन्द करके दीर्घ श्वसन का अभ्यास करें।

लाभः ध्यान, मंत्रजप, अभ्यास के लिए उपयोगी है। एकाग्रता बढ़ती है। जोड़ों की तकलीफे दूर होती है।

२. अर्धमत्स्येन्द्रासन : आसन पर बैठकर दोनों पैर आगे की तरफ फैलाएँ। बाये पैर को

घुटने से मोड़ कर उसकी एड़ी दाहिने नितंब के नीचे रखे। दाहिने पैर को घुटने से मोड़कर उसका पंजा बाँये घुटने के पास जमीन पर इस प्रकार रखे जिससे दाहिने पैर की अंगूलियाँ एवं बायाँ घूटना एक सीधी रेखा में रहे। दाहिने घुटने को बाँयी बगल में दबाते हुए बाँये हाथ से दाहिने पैर के पंजे को पकड़े। शरीर को दाहिने तरफ मरोड़े। दाहिने हाथ की हथेली कमर के पीछे जमीन पर रखे। गरदन को दाहिनी तरफ मोड़े। यह स्थिति में आपके कंधे, गरदन व दोनों हाथ एक सीधी रेखा में रहेंगे। बाह्य कुंभक में यथा क्षमता टीके रहे। पूरक करते हुए वापस मूल स्थिति में आये। पैरों की स्थिति बदल कर पुनरावर्तन करे।

लाभ : पैन्क्रियाज़ के स्त्राव को नियंत्रित करता है। मधुमेह में यह आसन उत्तम है। पेट पर जमी अतिरिक्त चर्बी दूर होती है। पैर व हाथों के जोड़ मुलायम बनते है। कृमि संबधित बीमारी में फायदेमंद है। मलावरोध व गैस संबधित तकलीफ दूर होती है।

३. पश्चिमोत्तानासन : आसन पर बैठे कर दोनों पैर सीधे फैलाए। कमर एवं गरदन सीधी रखे। दोनो हथेलियाँ घुटने पर स्थापित करे। पूरक करते हुए दोनो हाथों को आकाश की दिशा में सीधा उठाये। रेचक करते हुए कमर को सीधा रखते हुए आगे झूके। दोनो हाथो से पैरो के अंगूठे को पकड़े। मस्तक को दोनों घुटनों पर लगाये कोहनियाँ जमीन पर लगाए रहे। घुटनो को सीधा रखे। बाह्य कुंभक में टीके रहे पूरक करते हुए पुनः मूल स्थिति में आए ।

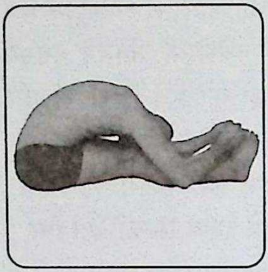

लाभः मलावरोध दूर होता है। ऋतुकाल बंधित तकलिफे दूर होती है। मोटापा कम होता है।

४. कार्मूकासन : आसन पर पैर सीधा करके बैठे। पूरक कर रेचक करते हुए आगे झुके। दाहिने हाथ से दाहिने पैर का अंगूठा एवं बाँये हाथ से बाँये पैर का अंगुठा पकडे। पूरक करते हुए बाँये पैर को मोड़ कर ऊपर उठाये। बाँया अंगूठा बाये कान से लगाकर कोहनी ऊपर की तरफ रखें। रेचक करते हुए मूल स्थिति में वापस आये।

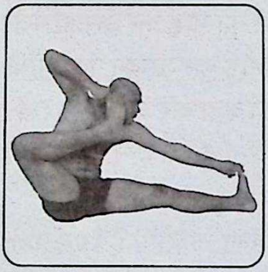

लाभः पैरों के स्नायुओ को मजबूत बनाता है। गर्भावस्था के प्रारंभिक महिनो में लाभकारी है। कोहनियाँ एवं गरदन के दर्द में राहत मिलती है।

५. पवन मुक्तासन : आसन पर उकडु बैठे। पूरक करते हुए दोनों हाथों को छाती समानांतर फैलाए। रेचक करते हुए दोंनो हाथ से घुटनो को बांधते हुए कोहनियों को पकड़ें। बाह्य कुंभक में मस्तक को झुकाकर ठोड्डी को घूंटनो के बीच लगाये। यथा क्षमता टीकने के बाद पूरक करते हुए मूल स्थिति में वापस आयें।

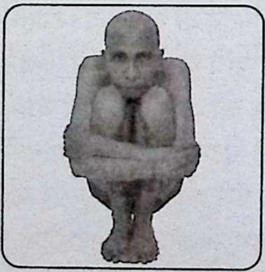

लाभ : थायरोइड की समस्या में लाभदायी है। साइटिका के दर्द में आराम देता है। कब्ज़ दूर करता है।

६. निमग्न वज्रासन : वज्रासन की भाँती पैर मोड़ कर पंजो को खडा रखे और नितंब जमीन पर रखकर बैठे। दीर्घ पूरक कर रेचक करते हुए कमर से आगे झुके और दोनों कोहनियाँ घुटनो पर प्रस्थापित करे। दोनों हथेलियों को मिलाकर ढोंडी हथेली के मध्य में रखे। आँखे बंद कर दीर्घ पूरक रेचक करे।

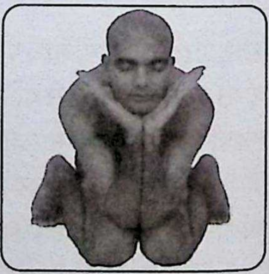

लाभः पैरों की नस नाड़िया लचीली बनती है। कंठ विकार दूर होते है। गेस की तकलीफ में राहत मिलती है।

७. भद्रासन : आसन पर पैर सीधे फैलकार बैठे। दोनों घुटनों को मोड कर पैरों के तलवे परस्पर मिलये। एडियाँ सीवनी को स्पर्श करे इस प्रकार रखे कि कमर व गरदन सीधी रहे। दोनों हथेलियाँ घुटनों पर रखे। पूरक कर रेचक करते हुए हथेलियों पर हलका दबाव बनाते हुए कंधो को ऊपर उठाए। जिससे कोहनियाँ सीधी रहे घुटने जमीन से लगे रहे। बाह्य कुंभक में यथाक्षमता टीक रहे। पूरक हुए शरीर को शिथील करे।

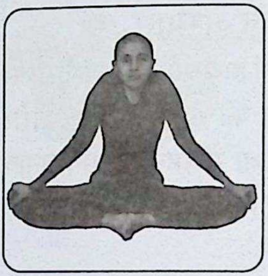

लाभः जंघा व पैरों के स्नायु मजबुत बनते है। कमर को सुदृढ बनाता है। अनियमित ऋतुकाल में लाभदायी है। पौरुष ग्रंथी की शक्ति को बढ़ाता है। धातु क्षय का अटकाव करता है। मूत्राशय संबधित तकलिफो में राहत देता है।

८. अधोमुखी श्वानासन : यह आसन के लिये घुटनो के बल जमीन पर बैठे। दोनों हथेलियों को आगे भूमी पर स्थापित करे। यह स्थिति में पूरक करे। आंतर कुंभक में घुटनो को बिना मोड़े जमीन से ऊपर उठाये, पंजे मिलाएँ व एड़ियों को जमीन पर लगाकर रखें। पीठ को सीधी करे। मस्तक को दोनों हाथो के बीच से नीचे की ओर झूकाये। रेचक करते हुए वापस घुटने मोड़ कर आराम की स्थिति में आये।

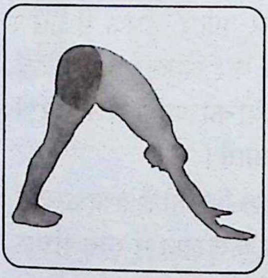

लाभ : पैरों के स्नायु व अस्थि जोड़ मजबूत बनते है। कमर सुदृढ़ बनती है। कंधो व कलाईयाँ मजबुत बनती है। मस्तक की ओर रक्त संचार बढ़ता है। चेहरे की सुंदरता बढ़ती है।

९. उष्ट्रासन : आसन पर घुटनो के सहारे खड़े रहे। पंजे जमीन पर रखते हुए एडियों पर बैठे। पंजों और घुटनो के बीच समान अंतर रखे। बाये हाथ से बाँयी एडी तथा दाहिने हाथ से दाहिनी एडी को पकड़े। पूरक करते हुए घुटनो और पैरो के पंजो पर शरीर का भार समान रुप से विभाजीत कर नितंब को एडियों से उपर उठाकर गरदन को पीछे की तरफ झूकाए। बाह्यकुंभक में यथा क्षमाता टीके। रेचक करते हुए वापस मूल स्थिति में एडियो पर बैठे।

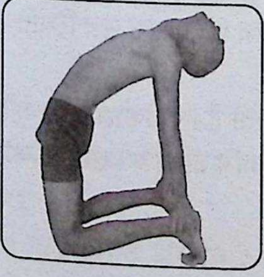

लाभ : घुटने तथा टखनो के जोड़ मजबूत बनते है। कंधे और सीने के स्नायुओ का विकास होता है। कमर लचीली बनती है। मलावरोध दूर होता है। उदरस्थ स्नायु मजबूत बनते है। वायु विकार दूर होते है। सर्वाइकल में लाभदायक है।

सीधे लेट कर करनेवाले आसनों का सरल अभ्यास

१. शवासन : आसन करने के लिए पीठ के बल लेट जायें। दोनों हाथ और पैर एक दूसरे से अलग रखें। हथेलीयों को आकाश की दिशा में रखें। शरीर तनाव विहीन, स्थिर, विश्राम अवस्था में रहने दें। मन तनाव मुक्त रहें। पूरा शरीर ढ़ीला छोड़ दें। आंखो को बन्द कर यह स्थिति में सामान्य श्वसन में टिके रहें।

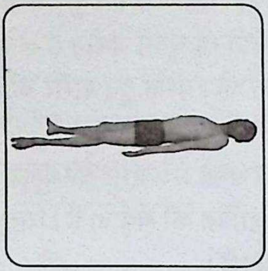

लाभ : शारिरिक और मानसिक थकान, तनाव, अनिद्रा, आलस्य आदि को दूर करता है। हृदय और रक्तचाप संबंधित बिमारीयों में फायदा देता है। रोग प्रतिकारक शक्ति बढ़ती है।

२. पद्मदोलासन : इस आसन के लिये पद्मासन बनाये। बाँये हाथ से बाँया तथा दाहिने हाथ से दाहिने घुटने को पकड़ें। पूरक कर आंतर कुंभक में धीरे से कमर के सहारे पीछे की ओर झुक कर संतुलन बनाये रखें। संतुलन बनाते हुए कंधे, घुटने और जंघा को जमीन से ऊपर रखें। रेचक करते हुए मूल स्थिति में वापस आयें।

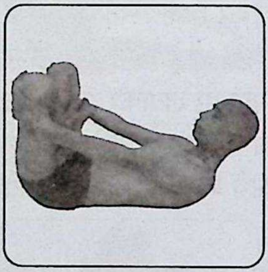

लाभ : कमर को भली प्रकार मालिश मिलती है तथा उसकी थकान दूर होती है। पीठ की हर एक कशेरुका में रक्त संचार अच्छी तरह से होता है।

३. द्वि-पाद उत्तानपादासन : पैरों को सीधा रखते हुए आसन पर सीधे लेटे। हथेलियाँ जमीन पर उल्टी रखें। पूरक कर आंतरकुंभक में दोनों पैर बिना मोड़े ४५° के कोण पर ऊपर उठाये। सामान्य श्वसन में यथाक्षमता रुकने का प्रयत्न करें। रेचक कर वापस मूल स्थिति में आये।

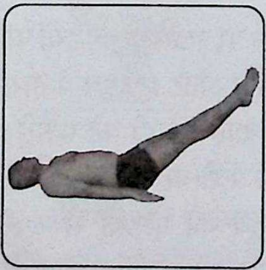

लाभः पेट तथा पेठु की चर्बी दूर होती है। वेरीकोझ वेइन की तकलीफ में यह आसन उपयोगी है। नाभि टलने की समस्या को ठीक करता है।

४. सूप्त पवन मुक्तासन : आसन पर सीधे पीठ के बल लेटें। पूरक करते हुए दोनों पैरों को घुटनो से मोड़ कर सीने के पास लाये। रेचक करते हुए दोनों हाथों से घुटनो को बांधते हुए हाथों की कोहनियों को पकड़ें। बाह्य कुंभक में मस्तक को उठाकर ठोड्डी को घुटनो के बीच लगाये। यथा क्षमता टीकने के बाद पूरक करते हुए मूल स्थिति में वापस आयें।

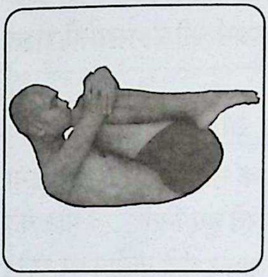

लाभ : थायरोइडकी तकलीफ में लाभदायी है। साइटीका के दर्द में राहत मिलती है। कब्ज़ दूर होता है

५. सेतुकासन : पैरो को मोड़ कर पीठ के बल सीधे लेट जाए। पंजे कमर के बराबर खुले रखे। हथेलीया कमर पर इस प्रकार रखें जिससे अंगुठा पेट पर तथा अँगलियाँ पीठ पर रहे। यह स्थिति में पूरक कर आंतर कुंभक में नितंब, पीठ और कमर जमीन से ऊपर उठायें। कोहनियाँ, कंधे, गरदन, एडीयाँ तथा मस्तक जमीन पर ही रहेंगे। कोहनीयो की मदद से कमर को यथाक्षमता उपर उठाये। रेचक करते हुऐ पुनः मूल स्थिति में वापस आयें।

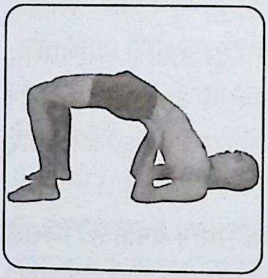

लाभ : थायरोइड, पेराथाइरोइड ग्रंथि के स्त्राव नियमित करता है। मूत्राशय संबंधित बिमारी में लाभदायक है। कंधे की तकलीफ में फायदेमंद है।

६ . सूप्त वज्रासन : यह आसन करने के लिए दोनों पैर सीधे कर के बैठे। दाहिने पैर को मोड़कर दाहिने नितंब के नीचे रखें। उसी प्रकार बाँए पैर को मोड़कर उसका पंजा बाँए नितंब के नीचे रखें। (वज्रासन बनाएँ) अब कोहनीयों की सहायता से पीठ के बल सीधे लेटे। दोंनो हाथों की हथेलियों को जंघा पर रखें। आँखें बंध कर यौगीक श्वसन का अभ्यास करें।

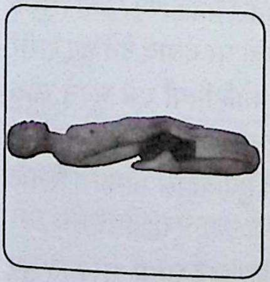

लाभः कमर और पीठ को लचीली बनाता है। वक्ष का विकास होता है। नाभी के नीचे के अंगो की बीमारीयों में लाभप्रद है। पाचन क्षमता बढाता है।

७ .वक्र कटि आसन : आसन करने के लिए जमीन पर पीठ के बल लेटे। दोनों पैरो को घुटनों से मोड़कर सीधा खडा रखे।

दोनों हाथ को कंधे के समान फैलाकर जमीन पर रखें। अब साँस भरते हुए दोनों घुटना एक तरफ झुकाकर जमीन पर रखें। एवं मस्तक को उससे विपरीत दिशा में मोंडे।

लाभ : मूत्राशय संबंधित बीमारीयों में राहत मिलती है। मासिकधर्म की समस्या में राहत मिलती है।

सीधे लेटकर करने के आसनों का कठीन अभ्यास

१. हलासन : पीठ के बल आसन पर लेटे। पूरक कर आंतरकुभक में दोनों पैर बिना घुँटना मोड़े जमीन से ऊपर उठाये। रेचक करते हुए नितंब एवं पीठ को उठाकर पैरों को मस्तक के पीछे ले जाकर पंजे जमीन पर रखे। घुटने सीधे रखे। हाथों को सीधा जमीन पर ही रहने दे। पुनः पूरक करते हुए आंतरकुंभक में पैरों को जमीन से सीधा उठाए। रेचक करते हुए धीरे से पैरों को जमीन पर रखे।

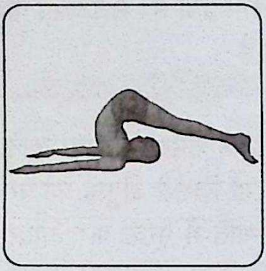

लाभः पेट व पेढु से संबंधित बिमारियाँ दूर होती है। मलावरोध दूर होता है। गले से संबंधित बिमारियो में आराम मिलता है। थायराइड ग्लेन्ड पर अधिक प्रभअङ्ड पड़ता है। कमर व पीठ दर्द में राहत मिलती है। चेताएं (ज्ञानतंतु) सतेज बनती है।

२. अर्धचक्रासन : इस आसन में शरीर की स्थिति आधे चक्र के समान बनती है। जिससे यह आसन का नाम अर्धचक्रासन है। आसन पर सीधे लेट जाए। दोनो पैरों को घूटनों में से मोड़कर जमीन पर रखे। हाथों को ऊपर उठाकर कंधो के पीछे इस प्रकार रखे जिससे अंगूलियाँ कंधो की तरफ भूमी पर रहे एवं कोहनिया आकाश की दिशा में रहे। पूरक कर आंतर कुंभक में हथेलियाँ एवं पंजों पर दबाव देते हुए शरीर को कमर के भाग से ऊपर उठाये। कोहिनियाँ एवं घूटने सीधे करने का प्रयत्न करे। यह स्थिति बनने के बाद आप सामान्य श्वसन में संतुलन बनाते हुए यथा क्षमता रुक सकते है। रेचक करते हुए वापस सामान्य स्थिति में आए।

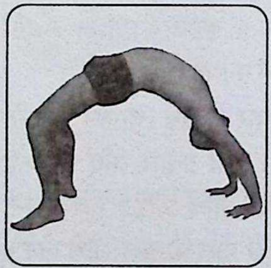

नोंध : अर्ध चक्रासन करने के बाद हथेलीयाँ और पैरों को अंदर की तरफ सरकाते हुए उँगलीयों के छोर को पैरों की एड़ी को स्पर्श करें। इस स्थिति को पूर्ण चक्रासन कहते है। सामान्य श्वसन में संतुलन बनाते हुए यथाक्षमता टीके रहे। रेचक करते हुए मूल स्थिति में वापस आए।

लाभः इस आसन का प्रभाव संपूर्ण शरीर पर पड़ता है हाथ व पैरो के स्नायु मजबूत बनते है।

रक्त परिभ्रमण सुचारु रुप से होता है। कमर लचीले बनते है। चंचलता कम होती है। मोटापा दूर होता है। वक्ष का विकास होता है। वायु कोटरो की अशुद्धियाँ दूर होती है।

४. सर्वांगासन : इस आसन का प्रभाव शरीर के सभी अंगो पर होता है जिसके कारण इस

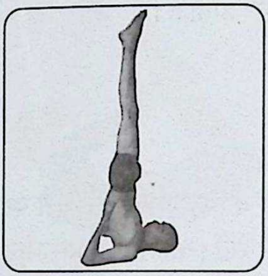

आसन को सर्वांगासन के नाम से जाना जाता है। आसन पर पीठ के बल लेटे। दोनों पैरों को साथ में रखे। दोनों हाथो की हथेलीयाँ जमीन पर उल्टी रखे। पूरक आंतर कुंभक में दोनों पैरो को जमीन से सीधा उपर उठाये। रेचक करते हुए हाथों के सहारे पीठ को ऊपर की ओर सीधी उठाये। दोनों पैर घुटनो से सीधे रखे। कंधो से लेकर पैरों के पंजे तक शरीर एक सीधी रेखा में रखे कोहनीयाँ, कंधे और गरदन जमीन से लगे रहे। बाह्य कुंभक में यथाक्षमता टिकाए रखीऐ। पुनः पुरक करे आंतर कुंभक करते हुए कमर व पीठ को नीचे जमीन पर सीधा रखे। रेचक करते हुए दोनों पैरों को जमीन पर मूल स्थिति में लाए।

लाभः सर्व अंगो को उत्तम व्यायाम प्रदान करता है। रक्तसंचार सुचार रुप से होता है। शिर्षासन से जो लाभ प्राप्त होते है उस में से अधिकतर लाभ इस आसन के अभ्यास द्वारा प्राप्त किये जा सकते है। हृदय शक्तिशाली बनता है। थायराइड के स्त्राव को नियंत्रित करता है।

५. मत्स्यासन : मछली के आकारवाला यह आसन मत्स्यासन कहलाता है। मत्स्यासन के

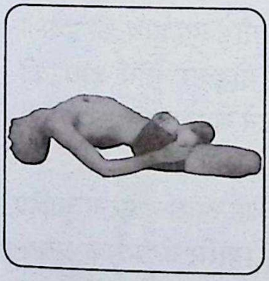

लिए आसन पर पद्मासन बनाकर बैठे। कोहनियों के सहारे पीठ के बल जमीन पर सीधा लेट जाए। पूरक कर आंतर कुभक में हाथों की सहायता से मस्तक के मध्य भाग को जमीन पर टीकाएँ। बाँए हाथ से दाहिने पैर का तथा दाहिने हाथ से बाँए पैर का अंगुठा पकड़े। कोहनियों को मोड़कर जमीन पर रखें। घुटने जमीन पर लगाए रखे। इस आसन में कमर एवं कंधे मछली की तराह उपर उठे हुए रहेंगे।

लाभ : चेतातंत्र, ज्ञानतंत्र, पाचनतंत्र एवं श्वसनतंत्र को प्रभावित करता है। कमर के दर्द को दूर कर उसे लचीला बनाता है। गले एवं स्वरतंत्र को प्रभावित कर लाभ देता है।

पेट के बल सोकर करने के आसनो का सरल अभ्यास

१ .मकरासन :

मकर शब्द से तात्पर्य है मगर का। मगर जैसा आसन मकरासन के नाम से जाना जाता है। आसन पर पेट के बल उल्टा लेटे। दोनो पंजो को खुला रखे। दोनों हाथ को मोड़ कर जमीन पर एक हथेली पर दुसरी हथेली उल्टी रखें। ठोड्डी को हथेली पर रखें। संपूर्ण शरीर को

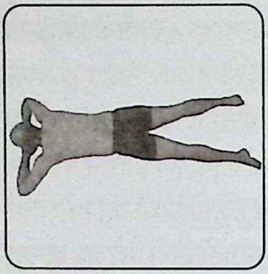

आरामदायक स्थिति में रखें। श्वासप्रश्वास को धीरा रखें।
लाभ : शारीरिक एवं मानसिक थकान, अनिंद्रा, तनाव आदि मनोविकार दूर होते है। सर्वाइकल के दर्दी को इस आसन में आराम मिलता है। गेस की तकलीफ दूर होती है।

२. भुजंगासन : आसन पर पेट के बल ऊल्टा लेट जायें। पंजो को एक फीट की दूरी पर रखें। हथेलीयों को वक्ष स्थल के पासे रखें। कोहनियाँ आसमान की ओर रखें। पूरक करते हुए मस्तक, कंधे, वक्ष और कमर को ऊपर उठायें। यथा क्षमता गरदन को पीछे की ओर झुकायें। रेचक करते हुए मूल स्थिति में वापस आयें।

लाभ : गरदन, सीना, पेट, कमर पैर और हाथ मजबूत बनते हैं। यकृत और पाचन सम्बन्धित बीमारी में राहत मिलते है। मलावरोध दूर होता है।

३. बालासन : बालासन करने के लिए आसन पर पेट के बल उल्टे लेटे। अब बाँया हाथ कोहनी से मोडे। बाँये गाल को बाँये मोड़े हुए हाथ की हथेली पर रखें। दाहिना हाथ कोहनी से मोड़कर बाँये हाथ की अंगूलियों के पास रखें। बाँया पैर घुंटने से मोड़कर उपर बाँयी कोहनी तक लाए।

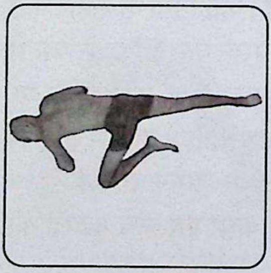

लाभ : जब अधिक थकान हो तब यह आसन करना चाहिए, इससे शरीर की थकान दूर हो जांती है। शरीर के प्रत्येक अवयव को आराम मिलता है। हृदय की गति सुचारु रुप से चलती है।

पेट के बल सोकर करनेवाले आसनो का कठीन अभ्यास

१. शलभासन : पेट के बल जमीन पर उल्टे लेटे। दोंनो हाथ की हथेलीयों को जंघा के नीचे रखें। ठोड्डी जमीन पर रखें। पूरक कर आंतर कुंभक में दोनो पैर एक साथ जमीन से ऊपर उठाएँ। दोनों घुटनों को सीधा रखें। रेचक कर पुनः मूल स्थिति में आएँ।

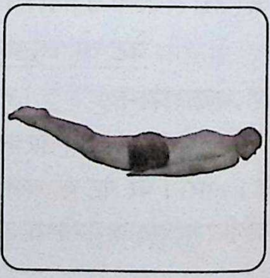

लाभ : मलावरोध, पेट की तकलीफ और गेस सम्बन्धित समस्या दूर होती है। कमर सुदृढ बनती है। बवासीर मस्से में

आराम मिलता है। मासिक धर्म के दौरान होनेवाले दर्द में राहत देता है। बहनों के लिए यह आसन विशेष लाभकारी है।

२. अर्ध धनुरासन : अर्ध धनुरासन के लिए पेट के बल जमीन पर लेटे। दोनो पैरो के बीच

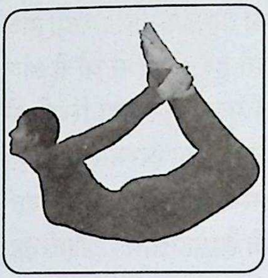

आधे फीट की दूरी रखे। ठुड्डी जमीन पर लगाएँ। पैर को मोड़ कर बाये हाथ से बाये पैर का टखना तथा दाहिने हाथ से दाहिना टखना पकड़े। कोहनी बाहर की तरफ रखे पूरक कर आंतर कुंभक में हाथ से पैरो को उपर की तरफ उठाये। पेट पर संतुलन बनाते हुए आगे से कंधे, मस्तक तथा पीछे से जंघा को उपर की तरफ उठाएँ।

नोंध – अर्ध धनुरासन की स्थिति में दोनो हाथो द्वारा दोनो पैरो के अंगुठे पकड़ने के बाद अंगुलियों को गोल घुमाते हुए धनुरासन करे। जिससे कोहनिया आगे की तरफ मुड़ कर रहेगी। इस स्थिति को पूर्ण धनुरासन कहा जाता है।

लाभ : पेट व आँतोसे सम्बन्धित तकलिफ दूर होती है। पीठ लचीली व मृदु बनती है। मलावरोध दूर होता है।

खडे रहकर करनेवाले आसनो का सरल अभ्यास

१. ताडासन : ताड़ासन करने के लिए सीधे खड़े रहें. दोनो पैरो के बीच में आधे फीट का

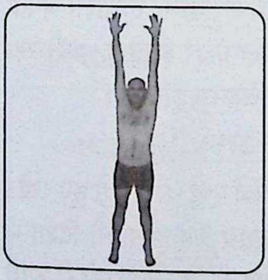

अंतर रखें। पूरक करते हुए दोंनो हाथों को आकाश की दिशा में ऊपर उठायें। साथ साथ पैरो के पंजो पर भी खड़े हो जाये। हाथ की उँगलीयों को खोल कर फैलाए। शरीर को उपर की तरफ खीचें। आंतर कुंभक में यथा क्षमता संतुलन बनाये रखें। रेचक करते हुए मूल स्थिति में आएँ।

लाभः मानसिक संतुलन बनाएँ रखनें में सहायक है। एकाग्रता बढ़ती है। कुमारावस्थामें ऊँचाई बढ़ती है।

२. त्रिकोणासन : त्रिकोणासन करने के लिये आसन पर सीधे खड़े रहें। दोनो पैरों के बीच दो से तीन फीट का अंतर रखें। पूरक करते हुऐ दोनो हाथों को कंधो के समानान्तर फैलाये। रेचक करते हुऐ दाहिनी हथेली को आगे जमीन पर रखें। बाँया हाथ आकाश की दिशामें सीधा फैलाये। मस्तक बाँयी और घुमाकर दृष्टि ऊपर उठे हाथ की तरफ रखें। यह हुआ त्रिकोणासन। पूरक करते हुए वापस मूल स्थिति में आयें।

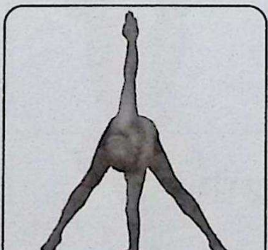

लाभ : गरदन, पीठ, नितम्ब, हाथ और पैरो के जोड़ लचीले बनते है। मलावरोध दूर होता है। यकृत की कार्यक्षमता बढ़ती है।

३. अर्धचंद्रासन : आसन पर दोनो पैर को जोड़ कर खड़े रहें। पूरक करते हुए दाहिने हाथ को धीरे धीरे आकाश की ओर उपर की तरफ ऊठायें। बाया हाथ पैर के साथ ही सीधा रखे। रेचक करते हुए कमर से बाँयी ओर झुके। यथा क्षमता टिके रहें। फिर से पूरक कर मूल स्थिति में वापस आयें। इस प्रकार दुसरी तरफ आसन का अभ्यास करे।

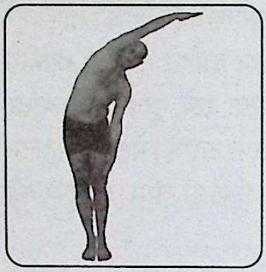

लाभ : शरीर लचीला बनता है। अस्थमा ,टी.बी और दमा जैसी बिमाँरियों में यह आसन उपयोगी है। कमर की अतिरीक्त चरबी दूर होती है।

४. पृष्ठवंशासन : आसन पर सीधे खडे रहे। दोनो पैरों को डेढ़ फीट की दूरी पर रखे। दोनो हथेलियों को कमर पर इस प्रकार स्थापित करे कि अंगुलियाँ नितंब पर रहें। पूरक करते हुए पैरो को सीधा रखते हुए कमर से पीछे की तरफ झूके। आंतरकुंभक में यथाक्षमता यह स्थिति बनाये रखे। रेचक करते हुए पुनः पूर्ववत् स्थिति में आये।

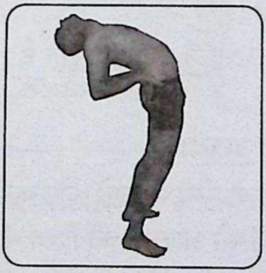

लाभः पेट व कमर की चर्बी दूर होती है। कमर लचीली बनती है। गरदन व कंधो से सम्बन्धित तकलिफे दूर होती है। शरीरस्थ चेतातत्रं कार्यक्षम बनता है। पैरों के जोड़ मजबूत बनते है। वक्ष का विकास होता है।

खडे रहकर करने के आसनो का कठीन अभ्यास

१. पाद तल हस्तासन : आसन पर सीधे खड़े रहे। दोनों पैर के पंजे एक साथ जुड़े हुए रखे। पूरक करते हुए दोनों हाथों को एक साथ आकाश की दिशा में उपर सीधे उठाएँ। रेचक करते हुए कमर के नीचले हिस्से से आगे की तरफ झुके। दोनों हाथों की अंगूलियों को पंजों के नीचे दबाकर रखें। घूंटनों को सीधा रखें। मस्तक दोनों हाथों के बीच में रखें। बाह्य कुंभक में यथा क्षमता टीके रहे। पुनः पूरक करते हुए मूल स्थिति में वापस आए।

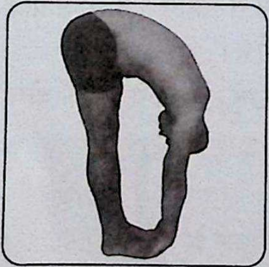

लाभ : सिर दर्द दूर होता है। पैर मजबूत बनते है। जोड़ों का दर्द दूर होता है।

२. अनुवृत्तासन : आसन पर दोनों पैरो के बीच एक फीट का अंतर रखकर खड़े रहे। पूरक करते हुए दोनों हाथों को आकाश की दिशा में उपर उठाएँ। इस स्थिति में पुरक कर आंतर कुंभक में यथा क्षमता पीछे की तरफ झुके। हाथ तथा मस्तक को पीछे की तरफ झुकाकर घुटनो को सीधा रखे। रेचक करते हुए मूल स्थिति में वापस आए।

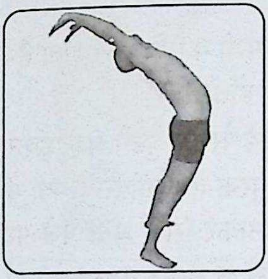

लाभ : कमर लचीली बनती है। पेट की चर्बी दूर होती है। पिंडलीयाँ मजबूत बनती है।

३. गरुडासन : आसन पर सीधे खड़े रहे। बाँए पैर पर संतुलन बनाते हुए दाहिने पैर को बाँए घुटने पर लपेट कर उसका पंजा बाँए पैर की पिंडली को लपेटते हुए उसके पीछे के हिस्से से लगाकर रखें। हाथ और कोहनियों को एक दूसरे पर लिपटाकर नमस्कार मुद्रा करें। शरीर को सीधा रखते हुए संतुलन बनाने का प्रयत्न करे। सामान्य श्वसन में टीके रहे।

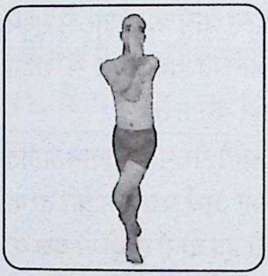

लाभ : हाथ पैर के जोड़ लचीले एवं मृदु बनते है। कमर सुदृढ बनती है। जंघा एवं पेढु की अतिरीक्त चर्बी दूर होती है।

संतुलन बनानेवाले आसनो का सरल अभ्यास

१. उत्कटासन : यह आसन करने के लिए दोनो पैरों के बीच में आधे फीट की दूरी रखें। पूरक करते हुए दोनो हाथों को आगे की ओर फैलायें। साथ ही में दोनो पैरों के पंजों पर ऊँचे उठिये। अब रेचक करते हुए घुटने मोड़ कर कुर्सी में बैठते हो वैसे बैठे। तथा कमर का हिस्सा सीधा रहे ऐसा प्रयत्न करे। यथा क्षमता टिके रहने के बाद पूरक करते हुए मूल स्थिति में वापस आए।

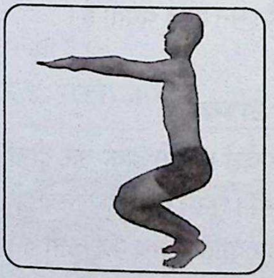

लाभ : जंघा और पिंडलियाँ मजबूत बनती है। पंजो से संबंधित बिमारियाँ दूर होती है। पेट को मालिश मिलती है। फ्लेट फूट की समस्या में राहत मिलती है।

७. पादांगुष्ठ स्थिरासन: आसन पर उकडु बैठे। पंजे एवं घुटने साथ में रखे। पूरक करते हुए दोनो हाथो को कंधे के समान फैलाए। रेचक करते हुए दोनो भूजाओं को घुटनों पर लपेटते हुए बाँए हाथ से दाहिनी कोहनी पर तथा दाहिने हाथ से बाँयी जंघा

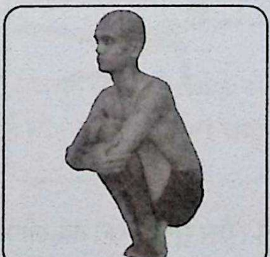

को पकड़े। बाह्य कुंभक में शरीर का संतुलन बनाते हुए पंजो के बल भूमि से उपर उठे। यथा क्षमता आसन टीकाए रखे। पूरक कर मूल स्थिति में वापस आए।

लाभ : अपान वायु पर नियंत्रिण स्थापित करने में सहायक है। पंजो का विकास होता है। फ्लेट फुट की समस्या में लाभदायी है। पेट सम्बन्धित तकलीफे दूर होती है।

७. ज्ञानासन : आसन पर दोनो पंजों के बल एड़ीयों पर बैठे। बाँये पैर को घुटने से मोड़कर

बाया टखना दाहिने घुटने पर रखे। पूरक कर आंतर कुंभक में दाहिने घुटने को जमीन से उपर ऊठाकर सिर्फ बाँये पंजे पर संतुलन बनाये रखे। दोनो हाथो से वक्ष के सामने नमस्कार मुद्रा रचे। सामान्य श्वास प्रश्वास में संतुलन बनाये रखे।

लाभ : ज्ञान वर्धक सुषुम्णा नाडी में प्राण वायु के संचार से सूक्ष्म चेतना जाग्रत होती है। पंजे से सम्बन्धित तकलीफ में राहत मिलती है। एकाग्रता बढ़ती है। मन स्थिर बनता है।

४. ध्रुवासन : ध्रुवासन करने के लिए आसन पर सीधे खडे रहे। बाँये पैर पर संतुलन बनाते

हुए दाहिने पैर को मोड़कर उसका पंजा अर्ध पद्मासन की तराह बाँयी जंघा के मूल पर रखे। पूरक करते हुए दोनो हाथों से वक्ष के पास नमस्कार मुद्रा रचे। आंतरकुंभक में यथाक्षमता संतुलन बनाएँ रखे। पैर की स्थिति बदल कर आसन का पुनरावर्तन करें।

लाभ : एकाग्रता बढती है। पैर के जोड़ मजबूत बनते है। चेतातंत्र सतेज बनता है। निर्णय शक्ति बढ़ती है। मन शांत बनता है।

संतुलन बनानेवाले आसनो का कठीन अभ्यास

१. एक पादहस्त मार्जारासन : आसन पर वज्रासन बनाकर बैठें। आगे झुक कर दोनों

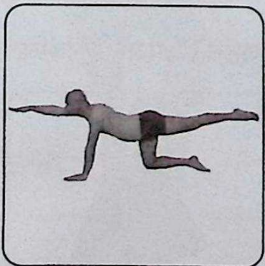

हथेलियाँ आगे की ओर जमीन पर रखें। घुटने तथा हथेलियों के बीच समान अंतर रखें। पूरक करते हुए दाहिने हाथ को आगे की ओर तथा बाँये पैर को पीछे की तरफ सीधा तथा समानांतर फैलाये। यथा क्षमता टिके रहने के बाद रेचक करते हुए मूल स्थिति में वापस आयें। हाथ पैर की स्थिति बदल कर पुनः आसन करे।

लाभ : संपूर्ण शरीर को व्यायाम मिलता है। पाचन क्षमता बढ़ती है। गैस सम्बन्धित तकलीफें दूर होती है। वक्ष का विकास होता है।

२. अर्ध शिर्षासन : आसन पर घुटनो के सहारे एड़ियों पर बैठे। दोनों हाथों की अंगुलियों

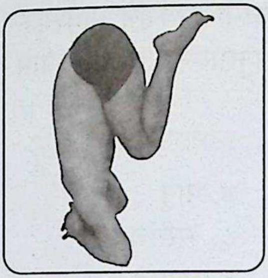

को परस्पर मिलाकर जमीन पर रखे। हथेलियों को दिवार की भाँती रखकर मस्तक का मध्य भाग उसे लगाकर रखे। हथेलियाँ, कोहनी व मस्तक पर शरीर के भार को समानरुप से विभाजीत कर पंजो को जमीन से उपर उठा ले। घुटने मोड़ कर एड़ियों को नितंब से लगाये। इस प्रारंभिक अवस्था में सामान्य श्वसन के साथ टीके रहे।

लाभः शिर्षासन काफी लाभप्रद आसन है। यह आसन शरीर के सभी तंत्रो को प्रभावित करता है। हदय की ओर रक्त का प्रवाह प्रचुर मात्रा में बहता है। रक्त संचार सुचारू रूपसे होने के कारण वृद्धावस्था पीछे हटाती है। चेहरे की सुंदरता बढती है। मस्तिष्क में आक्सीजन की कमी की पूर्ति करता है।

२४. शिर्षासन : अर्ध शिर्षासन की प्रारंभिक अवस्था में सामान्य श्वसन में संतुलन बनाने

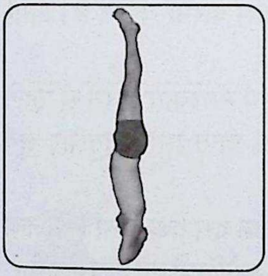

का अभ्यास करे। तत् पश्चात धीरे धीरे दोनों पैर घुटने को सीधा करते हुए पंजो को आकाश की दिशा में फैलाये। शरीर एक सीधी रेखा में रखे। सामान्य श्वसन में टीके रहे।

लाभ : यह आसन शरीर के प्रत्येक अंगो को प्रभावित करता है। मस्तक की तरफ प्राणवायु एवं रक्त का संचार सुचारु रुप से होता है। जिससे वायु सम्बन्धित मस्तक के विकार जैसे कि मायग्रेन आदि में राहत मिलती है। आँखों का तेज बढ़ता है। हृदय मजबूत बनता है।

२४. नटराजासन : यह आसन करने के लिये आसन पर सीधे खड़े रहे। बाँये पैर पर

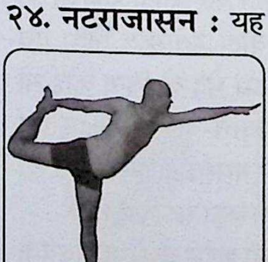

संतुलन बनाते हुए दाहिने पैर के टखने को पकड़े। बाँया हाथ को कंधे समानांतर आगे की तरफ सीधा करे। पूरक करके दाहिना पैर उपर उठाये। शरीर को कमर से थोड़ा आगे झुकाये। यह स्थिति में यथासंभव संतुलन बनाये रखे। रेचक करते हुए मूल स्थिति में वापस आए।

लाभ : एकाग्रता बढ़ती है। पिंडलीयाँ मजबूत बनती है। कंधो से सम्बन्धित तकलीफो में राहत मिलती है। पेट और कमर की चर्बी कम होती है।

सूर्य नमस्कार

सूर्य नमस्कार यानी सूर्य देवता को योगासनो सहित नमस्कार करना। सूर्य हमें आवश्यक ऊष्मा, ऊर्जा और प्रकाश प्रदान करता है। सनातन संस्कृति के अनुसार सूर्य के बारह नाम है।

सूर्य के बारह नाम

१. मित्र	२. रवि	३. सूर्य	४. भानु
५. खग	६. पुष्णे	७. हिरण्य गर्भ	८. मरीचि
९. आदित्य	१०. सविता	११.अर्काय	१२. भास्कर

सावधानी :

१. सभी आसन में शारिरीक स्थिति का सही रीति से अभ्यास करें।

२. सभी आसन के साथ जो श्वास का क्रम दिया है उसका सही पालन करें।

३ हृदय के रोगी, उच्च रक्तचाप के दर्दी, मिरगी का दौरा, चक्कर आर्ते हो (वर्टीगो), साइटीका, स्लिप डिस्क के दर्दीयों को सूर्य नमस्कार का अभ्यास करना वर्जित है। अगर अभ्यास करना हो तो योगाचार्य की निगरानी में अभ्यास करें।

४. हर्निया या अन्य कोई शारिरिक शल्य क्रिया की हो तो उन्हें सूर्य नमस्कार करने से पहले डॉक्टर या योगाचार्य से मार्गदर्शन एवं सावचेती की जानकारी प्राप्त कर तद्नुसार सूर्य नमस्कार करें।

५. सूर्य नमस्कार करते समय आसन क्रमांक तीन से आसन क्रमांक दस तक दोनों हथेलियों को जमीन पर रखने के बाद एक सूर्य नमस्कार खत्म न हो तब तक हथेलियों को उठायें नहीं।

६. सगर्भा महिला चौथे महिने के बाद सूर्य नमस्कार का अभ्यास ना करें।

कोई भी समतल और स्वस्छ हवा बहती हो वहाँ सूर्य नमस्कार कर सकते हैं। फिर भी अगर सूर्योदय के साथ सूर्यनमस्कार किया जाए तो शरीर ज्यादा स्वास्थ्य लाभ एवं आध्यात्मिक लाभ ले सकता है। सूर्य नमस्कार लिंग, जाति या उम्र भेद के बिना कोई भी स्वस्थ व्यक्ति कर सकता है। सूर्य नमस्कार की कितनी आवृत्ति करनी चाहिए वह व्यक्तिगत स्वास्थ्य पर निर्भर है। सामान्यतः दस-बारह तक सूर्य नमस्कार कर सकते हैं। नियमित अभ्यास करतें साधक हर हफ्ते सूर्य नमस्कार का अभ्यास बढ़ा सकते है।

सूर्य नमस्कार में कुल बारह आसनो का समावेश होता है, जो शरीर के सभी अवयवो को व्यायाम देते है।

सूर्य नमस्कार में किये जानेवाले बारह आसनो के नाम

१. नमस्कारासन	२. अनुवृत्तासन	३. पाद हस्तासन
४.नमस्यासन	५. दंडासन	६. पीपलीकासन
७.भुजंगासन	८. अधोमुख श्वानासन	९. नमस्यासन
१०.पादहस्तासन	११. अनुवृत्तासन	१२. नमस्कारासन

सूर्य नमस्कार की विधि

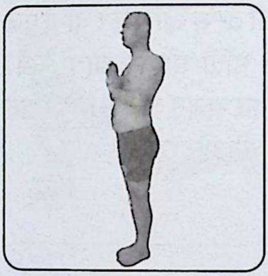

स्थिति १ – नमस्कारासन

आसन पर दोनों पैरों के पंजे मिला कर सीधे खड़े रहें। **पूरक** करते हुए दोनों हाथ उपर उठाकर सीने के पास नमस्कार मुद्रा रचें। आंखें बन्द कर मन को स्थिर करें।

मंत्र – ॐ मित्राय नमः ।

स्थिति २– अनुवृत्तासन

रेचक करते हुए दोनों पैरों को खोल कर, दोनों हाथों को उपर उठाए। कमर के नीचले भाग से पीछे की ओर झुकें। मस्तक को यथाक्षमता पीछे झुकायें।

मंत्र – ॐ रवये नमः।

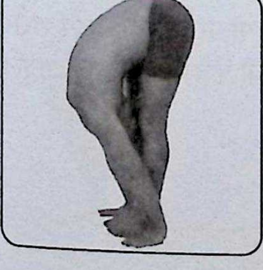

स्थति ३– पादहस्तासन

पूरक करते हुए कमर से सीधे हो जायें। रेचक करते हुए कमर से आगे झुक कर दोनों हाथ की हथेलीयों को पैरों के पंजो के आस पास रखें। पंजों को मिला कर रखें। मस्तक को दोनों भुजाओं के बीच रखें। ठुड्डी एवं मस्तक को घुटनों पर लगायें।

मंत्र – ॐ सूर्याय नमः ।

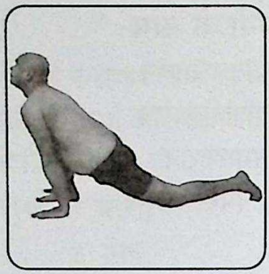

स्थिति ४ – नमस्यासन

पूरक करते हुए हथेलीयों पर वजन देते हुए बाँये पैर को पीछे की तरफ सीधा करें। घुटना जमीन पर लगायें एवं पंजा खड़ा रखें। हाथों को कोहनियों से सीधा रखें तथा मस्तक पीछे झुका कर दृष्टि आकाश की दिशा में रखें।

मंत्र – ॐ भानवे नमः ।

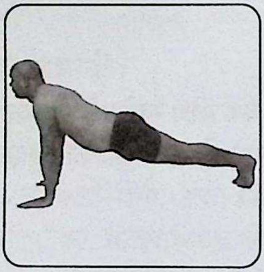

स्थति ५ – दंडासन

रेचक करते हुए दाहिने पैर को पीछे की तरफ खींच कर दोनों पंजे साथ में रखें। शरीर को एक दंड की भाँती सीधी रेखा में रखें। दोनों हथेलीयाँ जमीन पर सीधी रख कर वजन को बराबर रखते हुए संतुलन बनाएँ रखें। दृष्टि सामनी की ओर रखे।

मंत्र – ॐ खगाय नमः ।

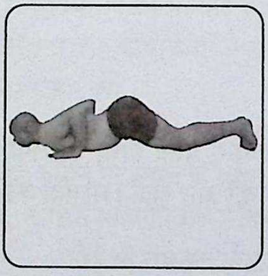

स्थिति ६– पीपलीकासन

पूरक कर रेचक करते हुए कमर को आगे की तरफ झुकायें। ठुड्डी, सीने का अग्रभाग, घुटना, पैरों के पंजे जमीन पर लगायें। पेट, पेढु, नितंब जमीन से उपर उठे हुए रहेंगे। दोनों हाथ सीने के पास इस प्रकार रखें जिससे कोहनियाँ आसमान की तरफ रहें।

मंत्र – ॐ पुष्णे नमः ।

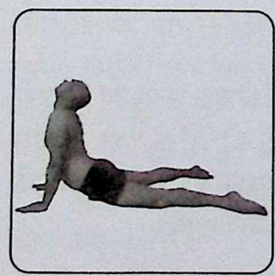

स्थिति ७ – भुजंगासन

पूरक करते हुए दोनों हाथों की हथेलीयों पर वजन देते हुए शरीर को पीछे की तराह उपर झुकाए। पैरो के पंजे पीछे की तरफ खुले एवं ऊल्टे रखें।

मंत्र – ॐ हिरण्यगर्भाय नमः ।

स्थिति ८- अधोमुख श्वानासन

रेचक करते हुए शरीर को कमर के भाग से उपर की ओर खींच कर अंग्रेंजी के ऊल्टें "वी" जैसी स्थिति बनायें। दोनों पैरों के पंजे साथ एवं एड़ीयाँ जमीन पर लगाकर रखे। मस्तक को दोनो हाथो की तरफ अंदर झुकाये।

मंत्र - ॐ मरिचये नमः ।

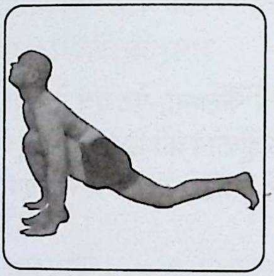

स्थिति ९- नमस्यासन

पूरक करते हुए बाँया पैर ऊठा कर दोनों हथेलीयोंके बीच रखें। दाहिने पैर का पंजा पीछे जमीन पर सीधा रखें। दाहिना घुटना जमीन पर लगा कर कमर को पीछे की ओर मोड़े। नज़र आकाश की दिशा में रखें।

मंत्र - ॐ आदित्याय नमः ।

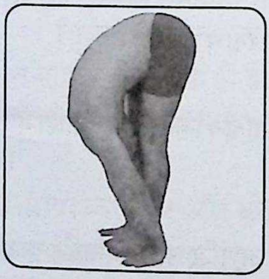

स्थिति १० पादहस्तासन

रेचक कर उपर उठते हुए दाहिना पैर बाँये पैर के पंजे के पास रखें। दोनों घुटने सीधा रखें। मस्तक दोनो हाथों के बीच झुकाकर माथा घुटनों पर लगायें।

मंत्र - ॐ सवित्रे नमः ।

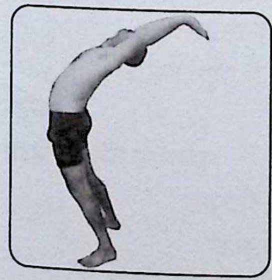

स्थिति ११- अनुवृत्तासन

पूरक करते हुए हाथो को उपर उठाकर कमर से सीधा हो जायें। दोनों पैरों के मध्य आधे फीट का अंतर रखें। आंतर कुंभक में कमर के नीचले हिस्से से पीछे की ओर झुकें।

मंत्र - ॐ अर्काय नमः ।

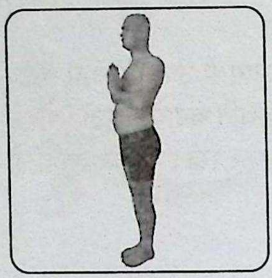

स्थिति १२- नमस्कारासन

रेचक करते हुए दोनों पैरों के पंजो को मिला कर कमर से सीधे होइये। नमस्कार मुद्रा बनाकर सीने के पास लायें। आँखे बन्द कर के सूर्य नारायण भगवान को प्रार्थना करें।

मंत्र - ॐ भास्कराय नमः ।

लाभ :

१. सूर्य नमस्कार में कमर को आगे झुकाना, पैरो को आगे पीछे फैलाना, पेट एवं पेढु पर बनता दबाव, हाथ पर शरीर का सीधा वजन, गरदन को पीछे झुकाने की क्रिया द्वारा सूर्य नमस्कार में शरीर के सभी अंगो को उत्तम व्यायाम मिलता है। इसलिए सूर्य नमस्कार एक संतुलित व्यायाम है।

२. पेट के अंदरुनि अवयवो को मालिश मिलती है। सूर्य नमस्कार नियमित रूप से करने से पाचन शक्ति बढ़ती है और पाचन से संबंधित कई बिमारियों में लाभ होता है।

३. पेढु स्थित आंतरीक अवयवो में रक्तसंचार पर्याप्त मात्रा में होता है। जिससे ऋतुकाल की तकलीफें, किडनी से संबंधित तकलिफ में राहत मिलती है।

४. सूर्य नमस्कार करने से रोम कूपों से पसीने के द्वारा शरीर से अशुद्धि और विषाक्त द्रव्य बाहर निकलते है। जिससे शरीर बिमारी मुक्त बनता है। उसकी रोग प्रतिकारक शक्ति बढ़ती है।

प्राणायाम

प्राणायाम को जानने से पूर्व शरीर में प्राण क्या है ? उसका महत्व क्या है ? वह जानना अत्यावश्यक है। जो चेतना इस संपूर्ण ब्रह्मांड में है, सर्वत्र विद्यमान है वही प्राण, वही चेतना हमारे भीतर भी है।

यथा पिंडे तथा ब्रह्मांडे

उसी को प्राण कहते है। इस प्राण के द्वारा ही समूचे ब्रह्मांड की गति विधियाँ संपन्न होती है। यह प्राण का सूक्ष्म रुप है। प्राण मुख्यतः १० माने गये है। पांच मुख्यप्राण एवं पांच उपप्राण। जो शरीर की विध विध गति विधियो में सहायभूत होते है।

गोरक्ष पद्धति अनुसार

प्राणोऽपानः समानश्चोदानव्यानौ च वायवः ।
नागः कूर्मोऽथ कृकलो देवदत्ते धनंजयः ॥

प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय यह दस वायु शरीर में है।

मुख्य प्राण :	१. प्राण	२. अपान	३. व्यान	४. समान	५. उदान
उपप्राण :	१. नाग	२. कूर्म	३. कृकल	४. देवदत्त	५. धनंजय

जिसके सामूहिक रुप को स्थुल प्राण कहते है। कर्म भेद से अलग यह पाँच प्राण या दस प्राण मूल ऊर्जा से एक ही है। मानव शरीर में स्थान और क्रिया भेद के आधार पर इसे पांच उपभागो में विभाजित किया गया है। इसके सामूहिक रुप को पंच प्राण या दसप्राण कहा जाता है।

दसप्राण का क्षेत्र और कार्य

शिव संहिता अनुसार

हृदि प्राणो गुदेऽपानः समानो नाभिमण्डले।
उदानः कण्ठदेशस्थो व्यानः सर्वशरीरगः॥

हृदय में प्राण, गुदा में अपान, नाभिमंडल में समान, कंठदेश में उदान और पूरे शरीर में व्यान है।

गोरक्ष पद्धति अनुसार

उद्गारे नाग आख्यातः कूर्म उन्मीलने स्मृतः।
कृकरः क्षुतकृज्ज्ञेयो देवदत्तो विजृन्भणे॥
न जहाति मृतं चापि सर्वव्यापी धनंजयः।
एते सर्वासु नाडीषु भ्रमन्ते जीवरूपीणः॥

उद्गार(डकार) लाना नागवायु का कर्म है। आंखो की पलके झपकाना कुर्मवायु का

तथा छींक लाना कृकल वायु का काम है। जम्भाई देवदत्त का काम है। धनंजय वायु पूरे शरीर में व्याप्त है। जो मृत शरीर में भी चार घडी तक शरीर में रहता है। वही जीव रुप से सभी नाड़ीयों में घूमता रहता है।

प्राणायाम का महत्व

योग का अर्थ है प्राणोपासना। इसलिये प्राणायाम योग का महत्व पूर्ण अंग माना गया है। प्राणायाम के अभ्यास से मानसिक स्थिरता प्राप्त होती है। मन की स्थिरता प्राणो की स्थिरता से जुडी हुई है। अतः प्राणायाम साधकगण के लिये तो उपयोगी है ही मगर उससे सामान्य जनसमुदाय को आध्यात्मिक लाभ भी प्राप्त होता है। **प्राणायामः परंतपः।** प्राणायाम परम तप रुप है।

योग वशिष्ठ में कहा है

द्वे बीजे राम चित्तस्य प्राणस्पंदनवासने ॥
एकस्मिश्च तयोर्नष्टे क्षिप्रं द्वे अपि नश्यतः ॥

हे राम! चित्त के दो बीज है - वासना और प्राणवायु। चित्त और प्राण इन दोनो में से एक का निरोध होने से दूसरे का भी निरोध हो जाता है।

हठयोग प्रदिपीका में कहा है

पवनो बध्यते येन मनस्तेनैव बध्यते।
मनश्च बध्यते येन पवनस्तेन बध्यते ॥

योगी जिस के द्वारा वायु को बांधते है, उसके द्वारा मन भी बंध जाता है। मन और पवन दोनो में से एक के बंधन से दोनो का बंधन हो जाता है।

बहिरंग योग सिद्ध करने से अंतरंग योग में प्रवेश करना सरल बनता है। बहिरंग योगकी कुंजी है प्राणो पर आयाम करना अर्थात् नियंत्रण करना, जिसे हम योग शास्त्रो में प्राणायाम के नाम से जानते है। प्राणायाम के द्वारा प्राण पर नियंत्रण स्थापित किया जा सकता है।

शास्त्रोक्त प्राणायाम

बहिरंग योग सिद्ध करने से अंतरंग योग में प्रवेश करना सरल बनता है। बहिरंग योग की चाबी है प्राणो पर आयाम करना अर्थात् नियंत्रण करना। जिसे हम योगशास्त्रो में प्राणायाम के नाम से जानते है। प्राणायाम द्वारा प्राणो पर नियंत्रण स्थापित किया जाता है।

आसन तथा प्राणायाम एक दूसरे के पूरक है। प्राण तथा भौतिक शरीर की क्रियाओ के बीच सुनिश्चित आतंरिक संबंध है। प्राण समस्त शारीरिक प्रणाली में व्याप्त समग्रतापूर्ण अत्यंतसूक्ष्म और असामान्य क्षमतावान चेतन ऊर्जा है। प्राण शरीर तथा मन के बीच संवादीता का कार्य करता है। प्राण में सक्रियता तो है, किंतु उसमें विचारशीलता का अभाव है। प्राण मात्र श्वास नहीं है। भोजन, जल, श्वासोश्वास द्वारा प्राण शक्ति प्राप्त हो सकती है परंतु उसके

बिना भी प्राण शक्ति प्राप्त हो सकती है क्योंकि प्राण भौतिक तत्व नहीं है।

प्राण की मुख्य पांच क्रियाशक्ति है मुख्य प्राण:-

(१) प्राण (२) अपान (३) समान (४) उदान (५) व्यान

प्राण का स्थान हृदय में है, वह श्वसनतंत्र और रुधिराभिसणतंत्र का कार्य करता है। अपान का स्थान गुदा में है, वह प्रजनन और मल, मूत्र त्याग इत्यादी उत्सर्जन तंत्र का कार्य करता है। समान का स्थान नाभि में है, वह जठराग्नि द्वारा शरीर में पाचन क्रिया को सुव्यवस्थित करता है तथा दैहिक प्राणी की शेष क्रियाओं में समानता की सृष्टि करता है। उदान का स्थान कंठ (गले में) है वह संभाषण (वार्तालाप) को गति प्रदान करता है तथा मृत्यु के बाद भी प्राणिक क्रियाओ को शरीर से अलग करता है। व्यान समस्त शरीर में व्याप्त रहता है, वह दैहिक प्रणाली में रक्त प्रवाह की प्रक्रिया को निरंतरता प्रदान करता रहता है। यह पंचविध क्रियाशक्ति प्राण का मुख्यरूप है। **तद् उपरांत प्राण की अन्य पाँच क्रियाशक्ति है उपप्राण :-१. नाग २. कूर्म ३. कृकल ४. देवदत्त ५. धनंजय**

नाग प्राण से ड़कार आनी, कूर्म प्राण से नेत्र की पलक झपकना, कृकल प्राण से छींक आना, देवदत्त प्राण से जम्हाइ आना तथा धनंजय प्राण से शरीर का विघटन करना उसके जैसे अन्य अनेक व्यापार है। सक्रियता प्राण का सार तत्त्व है। प्राण से हृदय में स्पंदन होता है, प्राण से फुफ्फुश अर्थात् फेफड़े क्रियाशील बनते है और प्राण से ही पेट में रसो के स्त्राव होते है। इसलिए श्वास प्रश्वास तथा फेफड़े के क्रियाकलापो में मृत्यु पर्यंत कोई अतिरेक पेदा नहीं होता। प्राण कभी विश्राम नहीं करता। प्राण को शरीर का प्रहरी माना जाता है।

प्राण को नियमन करने की विधि प्राणायाम है आसन की तराह हठयोग में प्राणायामो की भी अनेक विधियाँ दर्शाई गई है, जिससे प्राण का नियमन होता है।

शरीर की कार्य प्रणाली में प्राण विधविध स्त्रोतो से प्रवाहित होता है। वह अत्यंत व्यस्त रहता है। प्राण के क्षुब्ध कार्य कलाप मन को अशांत कर देते है और उसे कोई वस्तु पर एकाग्र नहीं होने देता। हम ज्यादा चलते है, सीढ़ीयाँ चढ़ते है अथवा क्रोधावस्था में होते है, तब प्राण उत्तेजना को प्राप्त होता है। साधक को अधिक कष्टदायक शारीरिक श्रम से विलग रहना चाहिये। स्वयं को मानसिक संवेगो से अलग कर सुदृढ़ योगासन में स्थिर रहकर प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिये। श्वास की प्रक्रिया इतनी हद तक मृदु होनी चाहिये कि वह निःशब्द बन जाए। मानसिक क्लेश की दशा में प्राणायाम का अभ्यास नहीं करना चाहिये, क्योंकि आवेग में श्वास की प्रक्रिया में समस्वरता नहीं रहती। जब क्षुधा, क्लेश अथवा संवेगात्मक विक्षोभकी स्थिति हो तब प्राणायामका अभ्यास नहीं करना। जब वातावरण पूर्ण रीति से शांत हो तब प्राणायाम करना चाहिये। उसके अभ्यास के समय के दौरान ध्यानासन का उपयोग करना चाहिये।

प्राणायाम के शुरूआती दौर में दीर्घ पूरक का अभ्यास करें उसके बाद क्रमशः कुंभक के लिए प्रयत्न करना चाहिये। हमारे श्वास की गति मंद होनी चाहिये और धीरे धीरे कम दीर्घ श्वास के स्थान पर क्रमशः गहरे दीर्घ श्वास का अभ्यास करना चाहिये। विक्षुब्ध मन का श्वास प्रवाह संतुलित नहीं हो सकता। उद्विग्न मन से प्राणायाम में व्यतिरेक का भय रहता है।

प्राणायाम की अनेकों विधियाँ साधना के लिए उपयुक्त है, किंतु योग के लक्ष्य के लिए गुरु के मार्गदर्शन अनुसार प्राप्त प्राण के नियमन की विधि का अभ्यास करें। प्राणायाम योग का लक्ष्य नहीं है किंतु साधन मात्र है। प्राणायाम आदि के माध्यम से मनोलय की स्थिति में आना है। प्राण प्रवाह को समझकर शरीर और मन के क्रियाकलाप करने से समस्वरता आती है। प्राणायाम के अभ्यास द्वारा शरीर, मन, स्नायुतंत्र तथा इन्द्रियों की समस्वरता का निर्माण किया जाता है। प्राणायाम द्वारा शरीर के प्रत्येक अंग तंत्र को जाग्रत करने के लिए प्राण को प्रबल कर प्रेरीत किया जाता है। प्राण के सक्रिय होने के साथ ही सभी शक्तियाँ जाग्रत (उद्बुद्ध)हो जाती है।

शास्त्रो में आसनो के अभ्यास से अधिक महत्त्व प्राणायाम को दिया गया है। हमारी शारीरिक स्थिति प्राण के क्रियाकलाप पर आधारित है। स्वस्थ प्राण शरीर को स्वास्थ्य प्रदान करता है। अभ्यास के समय योग सभी आपत्तियों को निषिद्ध मानता है। योगाभ्यास के दौरान भोजन, निन्द्रा और सभी क्रियाकलाप यथायोग्य युक्त होने चाहिये। योगसाधको को सदैव सतर्क रहनेका आदेश देता है।

पृथ्वी की आकर्षण शक्ति प्राण की गति को अधोमुखी बनाती है, इसलिए प्राण शरीर के अग्रांगो से बहीर्गामी होने लगता है। योग साधक काष्ठ निर्मित (लकडी की) खडाऊ का प्रयोग करते है जो विद्युत अवाहक होता है। खडाऊ प्राण के अपव्यय का बचाव करता है कोइ व्यक्ति साधक के चरण का स्पर्श करता है तो इस दैहिक स्पर्श के कारण साधक की संचित प्राणशक्ति में से आंशिक प्राणशक्ति चरण स्पर्श करनेवाले के शरीर में प्रवेश पाती है त्रुटीपूर्ण जीवनचर्या तथा अत्यधिक तनाव के कारण प्राण शक्ति का स्त्रोत बहुत मंद हो जाता है। प्राणायाम के अभ्यास में कभी जल्दी नहीं करनी चाहिये।

साधक दीर्घ समय साधना से प्राणायाम संबंधी सफलता की अनुभूति करता है अल्पकालीन अभ्यास करनेवाले साधको में वह लक्षण परीलक्षित नहीं होता। तेजोमय शरीर नवीन स्फूर्ती, कांति से प्रभावित रहनेवाली असामान्य शक्ति तथा प्रमाद का अभाव यह लक्षण प्राणायाम में प्रगति के संकेत चिह्न है।

प्राणायाम में सावधानी

प्राणायाम के साधक को अभ्यास करने से पूर्व योगशास्त्र ने बतायी हुई कुछ बातों को ध्यान में रखना चाहिये।

शांडिल्य उपनिषद् के अनुसार

यथा सिंहो गजे व्याघ्रो भवेद् वश्य शनै शनै।
तथैव सेवितो वायुरन्यथा हन्ति साधकम्।।

जिस प्रकार सिंह, हाथी, बाघ इत्यादी जंगली हिंसक प्राणीओ को धीरे धीरे वश करना चाहिए, जल्दबाजी करने से जिस प्रकार वन्य पशु अपने तालिम देनेवाले को शिकार बना देती है वैसे ही प्राणवायु भी अभ्यासी साधक को हानि पहुँचा सकता है।

प्राणायामादियुक्तेन सर्वरोगक्षयो भवेत् ।
अयुक्ताभ्यासयोगेन सर्वरोगसमुद्भवः।।

आहार के पथ्यापथ्य का पालन कर, त्रिबंध सहित जो गुरुनिर्दिष्ट प्राणायामो को किया जाता है वह युक्त प्राणायाम कहे जाते है। उसके द्वारा सभी रोगो से मुक्ति मिलती है। किन्तु उससे विपरीत प्राणायाम का अभ्यास करने से शरीर रोगो का घर बनता है।

प्राणायामेन युक्तेन सर्वरोगक्षयो भवेत् ।
अयुक्ताभ्यासयोगेन सर्वरोगसमुदभवः।।

प्राणायाम के सम्यक अभ्यास से सभी रोगो का क्षय होता है। असम्यक अभ्यास से सभी रोगो का उद्भव होता है।

प्राणायाम में उपयोगी शब्दो की समझ

पूरक : वायुमंडल से वायु को भीतर की और खींचना
रेचक : भीतरी वायु को बाहर नीकलना
कुंभक : श्वास प्रश्वास की गति को रोकना

कुंभक के प्रकार

१. आभ्यांतर कुंभक या आंतर कुंभक
२. बाह्यांतर कुंभक या बाह्य कुंभक

१. आभ्यांतर कुंभक/आंतर कुंभक : आभ्यांतर कुंभक का अर्थ होता है श्वास/ वायु को शरीर के भीतर लाने के बाद यथाक्षमता भीतर रोकना अर्थात् पूरक के बाद और रेचक से पहले श्वास को यथाक्षमता अंदर रोकने को आभ्यांतर कुंभक कहते है।

२. बाह्यांतर कुंभक/बाह्य कुंभक : बाह्यांतर कुंभक अर्थात् उदरस्य वायु को बाहर निकालने के पश्चात् पुनः श्वास न लेकर वही स्थिति में यथाक्षमता तक रुकने के अभ्यास को बाह्यांतर कुंभक कहते हैं।

योगासन प्राणायाम संबंधित सूचना एवं जानकारी

- प्राणायाम का अभ्यास करनेवाले साधक को युक्त आहार विहार करना चाहिए और ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए। उसको दुर्व्यसनो से दूर रहना चाहिए।

- बाँयी नासिका से किये गए प्राणायाम शीतलता और दाहिनी नासिका से किए गये प्राणायामो से शरीर में उष्णता बढ़ाता है। और मुख द्वारा किए जाने वाले प्राणायाम शीतल होते है। इसलिए व्यक्ति को अपनी प्रकृति को जान कर उसके अनुसार प्राणायामो की पसंदगी करनी चाहिए।

- साधक अभ्यासी को एक प्राणायाम (कुंभक)सीखने के बाद उसका अभ्यास तीन दिन तक अभ्यास करने के बाद चोथे दिन नया प्राणायाम सीखे। उसका दिन में तीन बार (सुबह, दुपहर, सायंकाल) इस तरह एक सप्ताह तक अभ्यास करें। अगर वह प्रकृति को अनुकूल न हो, व्याधि उत्पन्न करने वाला हो तो उसके प्रतिपक्षी प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए। उदाहरण के तौर पर सूर्यभेदन से होनेवाली तकलीफो के लिए चंद्रभेदन, चंद्रभेदन से होनेवाली तकलीफो के लिए सूर्यभेदन, वात पित्त और कफ से होनेवाले उपद्रव के लिए उज्जायी का प्रयोग करना चाहिए।

- साधक प्रथम प्रभु स्मरण कर गुरु निर्दिष्ट सूचना के अनुसार आसन प्राणायाम का अभ्यास करें।

- योगाभ्यास से पूर्व पेट व आँते खाली होनी चाहिए, अगर भोजन लिया है तो उचित समय के बाद ही अभ्यास करना चाहिए। प्रवाही पदार्थ के एक घंटे बाद, नाश्ते के २ घंटे बाद तथा मिताहार के साड़े तीन घंटे बाद और भारी आहार के ५ घंटे जितना समय अभ्यास नहीं करना चाहिये।

- स्वच्छ और शांत वातावरण में बिना जल्दबाज़ी किये, सावधानी से योगाभ्यास करना चाहिये। तेज़ बहती हवा, ज्यादा गरमी, कीड़े मकोड़ों वाले स्थान योगाभ्यास के लिए उचित नहीं है।

- प्राणायाम में रेचक, पूरक और कुंभक क्षमतानुसार ही करें। अयोग्य रीति से शरीर के किसी भी अंग को पीड़ित करते हुऐ योगाभ्यास करना नहीं चाहिए।

- बहुत कमज़ोर, रोगी, गर्भावती स्त्रीओं को आचार्य और चिकित्सक के अनुशासन में ही योगाभ्यास करना चाहिए।

- सिर्फ स्वास्थ लक्षी उद्देश्य से योगांगो का अभ्यास करने वाले अभ्यासी को भी योग्य शिक्षक के मार्गदर्शन में प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए।

- योगाभ्यास में नियमो के साथ नियमितता का भी पालन साधक और अभ्यासी के लिए

सफलता के द्वार खोल देता है।

- योगाभ्यास के लिए प्रातः काल का समय श्रेष्ठ माना जाता है। फिर भी समय की अनुकूलता के अनुसार सायंकाल और दुपहर में भी खाली पेट प्राणायाम का अभ्यास किया जा सकता है।
- **हठयोग प्रदीपिका अनुसार**

जलेन श्रमजातेन गात्रमर्दनमाचरेत्।
दृढ़ता लघुता चैव तेन गात्रस्य जायते ।।

प्राणायाम के श्रम से जल (पसीना)हो उसे शरीर पर ही मर्दन कर लेना चाहिए। जिससे शरीर में दृढ़ता और लघुता आती है।

- अपनी उर्जा के संरक्षण हेतु आसन और प्राणायाम का अभ्यास सीधा जमीन पर न करते हुए दरी, कार्पेट या ब्लेन्केट आदि का प्रयोग किया जा सकता है।

प्राणायाम के प्रकार

प्राणायाम के कितने प्रकार है यह कहना कठिन है। क्योंकि एक ही प्राणायाम साधक की कक्षानुसार विविध रुपों में नज़र आता है। उदाहरण के तौर पर कुंभक सहित किया जाने वाला प्राणायाम जब बिना कुंभक के किया जाता है तब उसका प्रभाव अलग होता है। वही प्राणायाम का अभ्यास जब योगी अलग अलग चक्र या तत्व की धारणा के साथ करता है तब भी वह अलग प्रभाव गुण लक्षण वाला होता है। प्राणायामों का अभ्यास जब कोई साधक योगी अलग अलग बंध-मुद्रा-चक्र या नाद सहित, मंत्र सहित या मंत्र रहित, आंतर या बाह्य कुंभक सहित या कुंभक रहित करता है तब उससे अनेक प्रकार के प्राणायामों का प्रादुर्भाव होता है। इसलिये उसे संख्या या प्रकार भेद के रुप में न देखते हुए मुनियों द्वारा मानव समाज के कल्याण हेतु दी गई साधना के अंतर्गत आवश्यक अंग के रुप में देखें।

अष्ट कुंभक :

कुंभक सहित किये जानेवाले मुख्य प्राणायामों को शास्त्र में अष्ट कुंभक के नाम से दर्शाया गया है।

हठयोग प्रदिपिका अनुसार

सूर्यभेदनमुज्जायी सीत्कारी शीतली तथा भस्त्रिका भ्रामरी मूर्च्छा
प्लाविनीत्यष्टकुम्भकाः ।।

सूर्यभेदन, उज्जाई, सीत्कारी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्छा, प्लाविनी अष्टकुंभक है।

१. अनुलोम विलोम प्राणायाम :

अनुलोम विलोम प्राणायाम को नाड़ी शुद्धि का प्राणायाम भी कहा जाता है।

विधि : सर्व प्रथम अनुकूल आसन का चयन करें। यह प्राणायाम के लिए पद्मासन, स्वस्तिकासन, सुखासन जैसे ध्यान लक्षी आसनो का चुनाव कर सकते हैं। आसन का चुनाव करने के बाद हथेली से "प्रणव मुद्रा" रचें। "प्रणव मुद्रा" के लिये तर्जनी एवं मध्यमा को हथेली की तरफ मोड़ें एवं अंगुष्ठ को दाहिनी नासिका पर हल्के दबाव के साथ रखें। बाँयी नासिका से दीर्घ पूरक करें यथा क्षमता पूरक करने के बाद अनामिका एवं कनिष्ठिका से बाँयी नासिका को बन्द करें यथा क्षमता आभ्यांतर कुंभक का अभ्यास करें। कुंभक के बाद दाहिने अंगुष्ठ को उठाकर दाहिनी नासिका से धीरे धीरे रेचक करें। जिस नासिका से रेचक करें उसी नासिका से पुनः पूरक करें। फेंफड़ो को यथा क्षमता प्राणवायु से भरे, तत् पश्चात् दाहिनी नासिका को अंगूष्ठ से बन्द कर क्षमता अनुसार आभ्यांतर कुंभक करें। कुंभक के बाद अनामिका और कनिष्ठका को उठाकर बाँयी ओर से संपूर्ण रेचक करें। इस प्रकार यह प्राणायाम का एक आवर्तन पूरा हुआ। इसी प्रकार से आप ५, १०, १५ या क्षमतानुसार अनुलोम विलोम प्राणायाम के आवर्तन कर सकते है।

पूरक

कुंभक

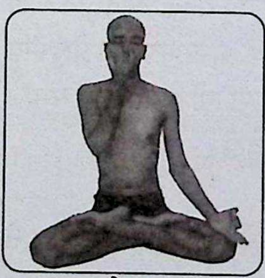

रेचक

लाभ :

१. अनुलोम विलोम प्राणयाम नाड़ी शुद्धि का प्राणायाम है। यह सभी नाड़ियों को विशुद्ध बनाता है।

२. फेंफड़ों की कार्यक्षमता बढ़ने से प्राणवायु प्रचुर मात्रा में रक्त से मिलती है जो जीवनी शक्ति का विकास करता है।

३. शरीरस्थ प्राणों में संतुलन बनाये रखने में सहायक है।

४. मानसिक तनाव, आलस्य, थकान जैसे मनोविकार दूर होते है। मन शांत रहता है।

५. जीवन के आध्यात्मिक क्षेत्र में उन्नति होती है। सद्गुणो का विकास होता है।

२. सूर्यभेदन प्राणायाम :

अष्टकुंभक का पहला प्राणायाम सूर्य भेदन प्राणायाम सूर्यनाडी अर्थात् पिंगला नाडी या दाहिनी नासिका द्वारा किया जाता है।

विधि : सूर्य भेदन करने के लिए सर्व प्रथम आसन पर बैठकर पद्मासन, सुखासन, स्वस्तिकासन इत्यादी ध्यानलक्षी आसनो में से अनुकूल आसन का चयन करें। कमर, मस्तक एक सीधी रेखा में रखें। बाँए हाथ से ज्ञानमुद्रा बनाकर उसे बाँए घूंटने पर रखें। दाहिने हाथ की मदद से प्रणवमुद्रा बनाए। प्राणायाम की शुरुआत प्रणव मुद्रा द्वारा बाँयी नासिका धीरे से बंध कर के, दाहिनी नासिका द्वारा अर्थात् पिंगला नाडी / सूर्यनाडी द्वारा दीर्घ पूरक करें। पूरक के अंत में अँगूठे द्वारा दाहिनी नासिका को बंध कर यथा क्षमता आंतर कुंभक करें। आंतर कुंभक के बाद बाँयी नासिका से दीर्घ रेचक करें। यह सूर्य भेदन प्राणायाम का एक आवर्तन हुआ। दूसरे आवर्तन के लिए रेचक के बाद पुनः दाहिनी नासिका द्वारा पूरक करें। पूरक के अंत में दाहिनी नासिका बंध कर आंतर कुंभक करें और बाँयी नासिका द्वारा दीर्घ रेचक करें। इसी प्रकार क्षमतानुसार अथवा योगाचार्य के मार्गदर्शन अनुसार सूर्यभेदन प्राणायाम का आवर्तन करें। अभ्यास के दौरान आँखे मूंद कर रखें।

लाभ :

१. यह प्राणायाम के दौरान सूर्यनाडी से बारंबार पूरक किया जाता है, जिसके कारण शरीर में पित्तकी उत्पित्ति होती है, पित्त प्रधान प्रकृति के साधको को गर्म ऋतु में यह प्राणायाम का अभ्यास वर्जित है।

२. योगशास्त्र अनुसार सूर्यभेदन प्राणायाम के नियमित और दीर्घकाल अभ्यास के द्वारा स्वस्थ और दीर्घायु जीवन प्राप्त होता है।

३. जठराग्नि प्रदिप्त करता है।

४. सूर्य भेदन प्राणायाम मस्तक की शुद्धि करतां है और वायु से होने वाले अनेक प्रकार के रोगो को मिटाता है।

५. उदर कृमी का नाश करतां है। लीवर शक्तिशाली बनता है।

६. त्वचा संबंधित व्याधियाँ तथा रक्त विकार में यह प्राणायाम अति लाभप्रद है।

३. उज्जाई प्राणायाम :

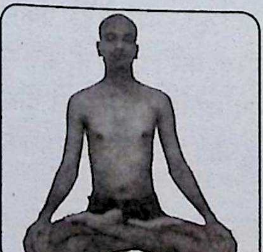

"उज्जाई" संस्कृत में उज्जी शब्द का अर्थ होता है विजय। जिससे उत् + जायी यानी की सफलता की और ले जानेवाला प्राणायाम। दूसरे शब्दो में कहा जाए तो यह प्राणायाम विशिष्ट ध्वनि के साथ किया जाता है।

विधि :

यह प्राणायाम को करने के लिए अनुकूल आसन का चयन करें। गरदन एवं कमर को सीधा रखें। दोनों हाथ घूंटनो पर रखे। साँसो को सामान्य रखें। धीरे धीरे दोनों नासिका द्वारा वायु को कंठध्वनि

के साथ आकर्षित करें। पूरक करने के बाद प्रणव मुद्रा द्वारा दोनों नासिका को बंद कर आंतर कुंभक करें। यथाक्षमता कुंभक करने के बाद बाँयी नासिका द्वारा पुनः कंठध्वनि के साथ रेचक करते हुए वायु को बाहर निकाले। इस प्रकारं पूरक, कुंभक और रेचक द्वारा उज्जाई प्राणायाम का एक आवर्तन पुरा होगा। इस प्राणायाम में वायु का क्षेत्र कंठ से हृदय पर्यंत का है। शुरुआती अभ्यासी साधक एक मिनट से लेकर धीरे धीरे पंद्रह मिनट तक प्राणायाम का अभ्यास बढ़ाये।

लाभ :

१. कंठ के कफ दोषो का हरण करता है और जठराग्नि प्रदिप्त करता है। एवं नाड़ी जलोदर तथा धातुगत दोषो का नाश करता है। यह कुंभक अभ्यास चलते चलते या खड़े रह कर भी किया जा सकता है।

२. उज्जाई कुंभक सभी कार्यो को सिद्ध करता है। कफ, कूपितवायु, अजिर्ण, आमवात, क्षय, ज्वर, तिल्ली की विकृति इत्यादि रोगो में लाभदायी है। स्वस्थ और दिर्घायु जीवन के लिए साधक को उज्जाई प्राणायाम करना चाहिए।

३. उज्जाई प्राणायाम मुख्य रूप से साधक को आध्यात्मिक उन्नति दिलाता है।

४. अनिद्रा के रोगी के लिए फायदे मंद है।

५. उच्च रक्तचाप के दर्दी के लिए उज्जाई प्राणायाम फायदेमंद है।

६. उज्जाई प्राणायाम द्वारा आलस्य, तनाव, मानसिक थकान दूर होते है।

४. सीत्कारी प्राणायाम

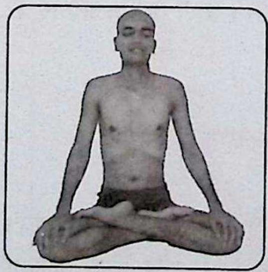

सीत्कारी प्राणायाम में "सीइइ..त्" ऐसे आवाज़ के साथ मुख से पूरक किया जाता है।

विधि : प्राणायाम के लिए आसन पर बैठ कर प्रथम अनुकूल आसन का चयन करें। कमर तथा मस्तक एक समान रेखा में रखें। आंखो को हलके से मूंदे। मूँह में दाँतो को बंद कर जिह्वा को नीचे के जड़बे के प्रथम चार दाँतो के मूल को स्पर्श हो इस प्रकार रखें। होंठ खुले रखकर मुख से दीर्घ पूरक करें। पूरक के अंत में यथा क्षमता कुंभक करें। कुंभक के बाद दोनो नासिका से दीर्घ रेचक करें। इस प्रकार सीत्कारी प्राणायाम का एक आवर्तन हुआ। इस प्रकार साधक क्षमतानुसार प्राणायाम के आवर्तन कर सकता है।

लाभ :

१. तमोगुण निर्बल बन कर सत्त्व गुण प्रबल बनता है जो साधक के शारिरीक एवं मानसिक बल में वृद्धि करता है।

२. भूख, प्यास, आलस्य, निन्द्रा से योगी पीड़ित नहीं होता।

३. यह प्राणायाम शरीर में शीतलता पेदा करता है, शरीर में दाह से उत्पन्न व्याधियों में राहत मिलती है। एवं पीत्त प्रधान प्रकृत्ति के साधक को गर्म ऋतु में अभ्यास करना हितावह है।

५. शीतली प्राणायाम

विधि : शीतली प्राणायाम करने के लिए कोई भी अनुकूल ध्यानासन का चयन करें। कमर, गरदन, मस्तक एक सीधी रेखा में रखें। दोनों हाथ घूंटनो पर रखें। आंखो को हलके से मूंदे। यह स्थिति में दोनों ओठ को अंग्रेजी के "ओ" की तरह मोड़े। अब जिह्वा को नली की तरह मोड़ कर दोनो ओठ के बीच से बहार निकाले। जिह्वा को पोलीनली की तरह मोड़ने को "काकीमुद्रा" कहते है। अब जिह्वा की मदद से दीर्घ पूरक करें। पूरक के बाद जिह्वा को अंदर ले के यथाक्षमता कुंभक करें। तत्पश्चात धीरे धीरे दोनों नासिका की मदद से रेचक करें। यह शीतली प्राणायाम का एक आवर्तन हुआ।

लाभ :

१. पेट का भारीपन, तिल्ली की वृद्धि इत्यादि बिमारी दूर होती है। ज्वर, पित्त, क्षुधा, पिपासा तथा विष की पिड़ा भी मिट जाती है।

२. शीतली, अजीर्ण, कफ, पित्तनाशक है, तथा प्राण को शांत करता है, प्यास बुझाता है, पित्त विकार से उत्पन्न बिमारीयाँ दूर करता है, शरीर में शांति और कांति लाता है तथा रक्तचाप का शमन करता है।

३. त्वचा से सबंधित व्याधियाँ, गरमी सबंधित दाह, उष्णता, पित्त इत्यादि शीतली प्राणायाम में हीतकारी है। गरमी की मौसम में और गर्म प्रदेश में यह प्राणायाम करना हितकारी है।

सावधानी :

ज्यादातर हम नासिका द्वारा श्वास लेते है। जिससे नासिका में रहे रूवों के द्वारा हवा स्वच्छ होकर फेफड़ों में जाती है। जब की इस प्रकार के प्राणायाम में हमें मुख द्वारा साँस लेना है। जहाँ उसे स्वच्छ होने का अवकाश नहीं मिलता। इसलिए जब शीतली प्राणायाम या अन्य उसी वर्ग के प्राणायाम के लिए स्वच्छ हवादान जगह का चयन करें। अधिक सर्द मौसम में इस प्राणायाम का अभ्यास नहीं करना चाहिए।

६. भस्त्रिका प्राणायाम

भस्त्रिका शब्द लुहार की धौकनी से बनता है। साधक को लुहार की धौकनी की भाँति वायु का शरीर में शीघ्रता से आवागमन करना है।

विधिः भस्त्रिका प्राणायाम के लिये अनुकूल आसन का चयन करें। दोनों घुटनों पर हथेलियों को स्थापित करे। पीठ व गरदन सीधे रखें। दोनों नासारंध्रों की सहयता से शीघ्रता से लयबद्ध पूरक व रेचक करें। पूरक व रेचक के तकरीबन ५० से ६० आर्वतन या थकान होने तक अभ्यास करे। अंत में दाहिने नासारंध्र से पूरक कर आंतर कुंभक करे यथा क्षमता आंतर कुंभक के बाद बायी नासीका से रेचक करे और भस्त्रिका प्राणायाम संपन्न करें।

सावधानी :

भस्त्रिका प्राणायाम का अभ्यास सुबह एवं शाम के वक्त करना हितावह है। भस्त्रिका प्राणायाम गरम प्रकृति का होने से मध्याह्न के समय करना हितावह नहीं है।

लाभ :

१. हठयोग प्रदिपिका के अनुसार भस्त्रिका के अभ्यास से वात-पित्त -कफ जन्य विकार दूर होते है। जठराग्नि प्रदिप्त होती है। कुंडलिनी जागरण में यह प्राणाायाम सहायभूत है। श्वसन तंत्र की अशुद्धियाँ दूर होती है। वायुकोटरो की शुद्धि होती है।

७. भ्रामरी प्राणायाम

भँवरा या भँवरी घर में, बागीचे में या उद्यान में जिस प्रकार गुन-गुन कर के गुंजारव करता है, ऐसा ही गुंजारव इस प्राणायाम में किया जाता है इसलिये यह प्राणायाम "भ्रामरी प्राणायाम" कहा जाता है। जो स्मरण शक्ति के लिए लाभप्रद प्राणायाम है। यह प्राणायाम में हमे हमारे दोनो हाथ की अंगुलियों के सहयोग से आँख, नाक, कान, मुँह को ढ़कना है जिसे "षडमुखी मुद्रा" या "भ्रामरी मुद्रा" कहा जाता।

विधि :

आसन पर पद्मासन में बैठकर गरदन और कमर एक सीधी रेखा में रखें। दोनो हाथ की अंगुलियों को चेहरे पर रख कर चेहरे को ढ़के। पहली अंगुलि आंख पर ,दूसरी तथा तीसरी अंगुलि नाक पर और चोथी होंठ के नीचे तथा अंगुठे को कानो में डाले। दीर्घ पूरक करें। रेचक करते हुऐ बन्द मुँह के द्वारा "म.....म" का उच्चारण करें। साँस पूरा होने तक गुंजारव करे। हमने भँवरे की तराह गुंजारव किया। फिर दोबारा दीर्घ पूरक कर पुनः प्राणायाम करें।

लाभ :

भ्रामरी प्राणायाम के द्वारा साधक को अनाहत नाद की अनुभूति होती है। कंठ तथा श्वरतंत्र से सम्बन्धि व्याधियाँ जैसे की थायरोइड, पेराथायरोइड, टॉन्सिल्स इत्यादि में प्राणायाम लाभदायक है। आवाज़ मधुर बनती है। मन शांत बन कर स्थिर बनता है। मस्तिष्क की सूक्ष्म चेतनाऐं जाग्रत बनती है। बाल्यावस्था में तुतलाना दूर होता है।

८. चंद्र भेदन प्राणायाम

अष्टकुंभक में एक प्राणायाम चंद्रभेदन प्राणायाम चंद्रनाडी अर्थात् की इडानाडी यानी बाँयी नासिका द्वारा किया जाता है।

विधि :

चंद्रभेदन करने के लिए सर्व प्रथम आसन पर बैठकर पद्मासन, सुखासन, स्वस्तिकासन इत्यादी ध्यानलक्षी आसनों में से अनुकूल आसन का चयन करें। कमर, गरदन, मस्तक एक सीधी रेखामें रखें। बाँये हाथ से ज्ञानमुद्रा बनाकर उसे बाँये घूंटने पर रखे। दाहिने हाथ की सहायता से प्रणव मुद्रा बनाएँ। प्राणायाम की शुरुआत प्रणव मुद्रा द्वारा दाहिनी नासिका को बंध कर, बाँयी नासिका द्वारा अर्थात् इडानाडी द्वारा दीर्घ पूरक करें। पूरक के बाद अंगुठे द्वारा बाँयी नासिका बंद कर यथा क्षमता आंतर कुंभक करें। आंतर कुंभक के बाद दाहिनी नासिका से दीर्घ रेचक करें। यह चंद्रभेदन प्राणायाम का एक आवर्तन हुआ। दूसरे आवर्तन के लिए पुनः बाँयी नासिका से पूरक कर यथा क्षमता आंतर कुंभक कर दाहिनी नासिका से रेचक करें। यह चंद्रभेदन प्राणायाम का दूसरा आवर्तन हुआ। इस प्रकार क्षमतानुसार अथवा योगाचार्य के मार्गदर्शन अनुसार चंद्रभेदन प्राणायाम के आवर्तन करें। अभ्यास के दौरान आंखे बंध रखे।

लाभ :

यह प्राणायाम शीतप्रद है। पीत्त प्रधान प्रकृति वाले साधक को गर्म ऋतु में यह प्राणायाम लाभप्रद है।

९. मूर्छा प्राणायाम

इस प्राणायाम के द्वारा मूर्छा उत्पन्न होने के कारण इस प्राणायाम को मूर्छा प्राणायाम कहते है।

विधि : अनुकूल आसन का चयन कर प्राणायाम के लिए स्व को तैयार करें। दोनों हाथ घूँटनो पर ज्ञानमुद्रा में रखें। दोनों नासिका से दीर्घ पूरक करें। पूरक के अंत में जालंधर बंध बाँधकर वायु को रोके। आँखे बंध कर मन को भ्रूमध्य में एकाग्र करे। यथा क्षमता कुंभक के बाद दोनो नासिका द्वारा सहज रेचक होगा। उत्तम जालंधर बंध करने से प्राण अपान की ऊपर के चक्रो में निर्बाध गति होती है। तत् पश्चात् जालंधर बंध खुल जाता है। मूर्छा प्राणायाम के अभ्यास से प्राणो का उर्ध्वगमन होता है। भ्रुकुटि में कभी ज्योति दर्शन होता है तथा मन मूर्छित होता है इसलिये यह प्राणायाम मूर्छा प्राणायाम कहलाता है।

लाभ :

मन की संकल्प विकल्प करने की शक्ति नाश होती है। मन अमन बनकर परमात्मा में लीन बनने लगता है।

१०. प्लाविनी कुंभक :

"प्लाविनी" शब्द संस्कृत भाषा के प्लु शब्द से बना है जिसका अर्थ होता है "तैरना" या "बहना"।

विधि : अनुकूल आसन का चयन कर आसन पर स्थिर बैठे। दोनों नासिका द्वारा पूरक कर उदर में वायु को भरे। तत् पश्चात् कुंभक करे। यह प्राणायाम साधक की साधना में स्वयं उद्भूत होता है तब वायु आँतो में जाकर समस्त शरीर की अशुद्धियाँ दूर करता है जिससे शरीर हलका हो गया हो ऐसा महसूस होता है या अभी शरीर ऊपर उठकर आकाश में गमन करने लगेगा। कुंभक के अंत में दोनों नासापुट द्वारा रेचक करें।

लाभ :

इस प्राणायाम के दीर्घ अभ्यास द्वारा साधक विपुल जलराशि में डूबता नहीं है। वह जल पर बैठकर, चलकर या सोकर इस प्राणायाम का अभ्यास करता है। जठराग्नि प्रदिप्त करता है और कब्ज दूर करता है। प्राण, अपान, समान वायु की शुद्धि कर उसकी गति को नियमित बनाता है।

सूचना : आरंभ के अभ्यासी को यह प्राणायाम गुरु निर्दिष्ट विधि अनुसार कमरे में बैठकर ही करें। जल में बैठकर, चलकर या सो कर प्राणायाम करने की विधि यह प्राणायाम सिद्धि के लक्षण है जो दीर्घ अभ्यास बाद ही जन्म लेते है।

बंध

बंध का अर्थ होता है बाँधना। शरीर के कुछ खास अंगों में स्नायुओं की विशिष्टि स्थिति धारण करना बंध कहलाता है। शारिरीक संकोचन अथवा बाँधने की क्रिया प्रक्रिया का सूक्ष्म शरीर पर भी गहराई से प्रभाव देखने मिलता है बंध के अभ्यास से प्राण शक्तिओ की सूक्ष्मधाराएँ एक विशिष्ट अंग प्रदेश में प्रत्यावर्तित हो जाती है। उसका सीधा प्रभाव साधक के तन मन पर पड़ता है। बंध एक शक्तिशाली योग क्रिया है।

बंध मुख्यतः तीन प्रकार के दर्शाये गये है।

१. मूलबंध २. जालंधर बंध ३. उड्डियान बंध

तीन बंध के संयुक्त रुप में किये जाने वाले अभ्यास को बंधत्रय या त्रिबंध कहते है। आवश्यकता के अनुसार किसी भी दो बंधो का प्रयोग भी एक साथ उचित श्वास प्रश्वास के साथ किया जा सकता है। जिसे **द्वि - बंध** कहते है।

१. मूलबंध : मूलबंध को आधार बंध भी कहा जाता है। इस यौगीक क्रिया में पीठ के नीचे स्थित गुदा स्नायुओ का आकुंचन -प्रसरण किया जाता है।

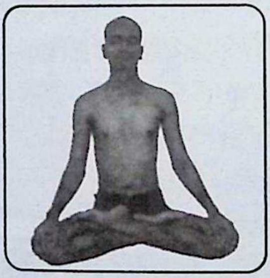

विधि :

पद्मासन, सिद्धासन या सुखासन में इस प्रकार बैठे की योनिस्थान एड़ी से दबा रहे। दोनों हथेलियाँ घुटनो पर स्थापित करें। बाह्य कुंभक में गुदा के स्नायुओ का बार-बार आकुंचन प्रसरण करे। फिर सामान्य स्थिति में आकर स्नायुओ ढीला छोड़े। पुनः परक कर सामान्य स्थिति में आकर स्नायुओ ढीला छोड़े। पुनः पुरक कर सामान्य स्थिति में आऐ।

लाभ : मूलबंध के अभ्यास से अपानवायु उर्ध्वगामी बनता है। ब्रह्मचर्य के पालन में सहायता मिलती है। मूलबंध विशेष रुप में ज्ञानतंत्र से जूडी क्रिया है। जिससे ज्ञानतंत्र सुचारु रुप सक्रिय बनता है हृदय मजबूत बनता है। गुदा संबंधित दर्द, व्याधि में राहत मिलती है। ब्रह्मचर्य पालन में सहयोगी है।

शास्त्रो में मूलबंध का उल्लेख

हठयोग प्रदिपीका के अनुसार मूलबंध

अधो-गतिम् अपानं वा ऊर्ध्वगं कुरुते बलात्।
आकुञ्चनेन तं प्राहुर् मूल- बन्धं हि योगिनः ॥

मूलबंध में अधोगति वाले अपानवायु को गुदा मार्ग का आकुंचन-प्रसरण कर के ऊर्ध्वगामी बनाना है। जिसे योगीजन मूलबंध कहते है।

२. जालंधर बंध :

संस्कृत शब्द "जालन" का अर्थ होता है जाल और "धर" का अर्थ होता है धारा, प्रवाह। जालंधर बंध का अर्थ होता है "शरीरस्थ नाडीयों का जाल अथवा गुच्छा।" जालंधर बंध में प्राण का प्रवाह गरदन प्रदेश में बांधा जाता है, जिससे वहाँ पर प्राण का प्रवाह निर्बाध रूप से सुषुम्णा में प्रवाहित होता है।

शास्त्रो में जालंधर बंध का उल्लेख

शिवसंहिता अनुसार

बद्धगलशिराजालं हृदये चिबुकं न्यसेत् ।
बन्धो जालन्धर प्रोक्तो देवानामपि दुर्लभः ।।
नाभीस्थवह्निर्जन्तूनां सहस्त्रकमलच्चुतम् ।
पिबेत्पीयूषविस्तारं तदर्थ बन्धयेदिमम् ।।

इस बंध के लिये कंठ प्रदेश की शिराओ को आबद्ध कर हृदय से ठुड्डी को मिलाले तो यह जालंधर कहलाता है। यह जालंधर बंध देवताओ को भी दुर्लभ है। यह बंध के द्वारा साधक सहस्त्रदल कमल से स्त्रवित होने वाला अमृत का पान कर के स्वयं ही कालजय बन जाता है। क्योंकि जठराग्नि द्वारा अमृत का शोषण कर लेने से प्राणी की आयु क्षीण होती है।

बन्धेनानेन पीयूषं स्वयं पिबति बुद्धिमान् ।
अमरत्वज्च समप्राप्य मोदते भुवनत्रये ।।
जालन्धरो बन्ध एष सिद्धानां सिद्धिदायकः ।
अभ्यासः क्रियते नित्यं योगिना सिद्धिमिच्छता ।।

यह बंध से बुद्धिमान योगी स्वयं अमृत का पान करता है और अमरत्व को प्राप्त करता है। तीनो लोको में प्रसन्नता से विहार करता है। यह जालंधरबंध सिद्धिप्राप्त पुरुषो के लिये भी सिद्धि दायक प्रमाणित होता है। इस का निरंतर अभ्यास करने वाले योगी सिद्धि लाभ करते है।

हठयोग प्रदिपीका अनुसार

कण्ठमाकुज्च्य हृदय स्थापयेच्चिबुक दृढम् ।
बन्धो जालन्धराखयोडयं जरामृत्यु विनाशकः ।।

कंठ को सिकुडकर सीने पर दृढ़ता से कसे। जरामृत्यु का नाश करने वाला यह बंध जालंधर बंध कहलाता है।

विधि

जालंधर बंध करने के लिए अनुकूल आसन का चयन करें। ध्यान रखें की आसन की स्थिति में आपके घुटने दृढता से जमीन पर लगे रहे। दोनों हथेलीयाँ घूंटनो पर रखें। आँखे बंध कर शरीर को सीधा व शिथिल रखें। दिर्घ पूरक करें। बाह्य कुंभक में मस्तक आगे

की ओर झूकाकर ठुड्डी को कंठकूप पर लगायें। हाथ को कोहनी से सीधा रखें। हथेलीयों पर हलका सा दबाव रखें। यह स्थिति में गरदन में विशेष दबाव पड़ेगा। एवं कंधे उपर की ओर उठेगें जिससे कंठकूप पर पकड़ ओर मजबूत बने। जब तक आप कुंभक टिका सके तब तक यह स्थिति बनाये रखे। उसके बाद कंधे को शिथिल कर, कोहनियों को ठीला करे। मस्तक सीधा करें। अब धीरे धीरे साँस ले। सामान्य स्थिति में आने के बाद फिर जालंधर बंध का अभ्यास करें।

सावधानी :

१. जालंधर बंध की क्रिया के दौरान साँस लेने छोड़ने की प्रक्रिया न करें।

२. आरंभ के अभ्यासी को पांच आवृत्ति से शुरू कर धीरे धीरे अभ्यास के साथ क्रमशः समय बढ़ाना चाहिए।

३. जिनको उच्च रक्तचाप या हृदय की बीमारी हो वह जालंधर बंध का अभ्यास न करें। जब की जालंधर बंध का अभ्यास रक्त चाप कम करता है। कितुं जरूरत से ज्यादा कुंभक करने से बंध के बाद हृदय में गभराहट होती है।

फायदे : साधक की साधना में स्वयंभू जालंधरबंध का सुदिर्घ अभ्यास से मूर्छा प्राणायाम का प्रादुर्भाव होता है। गले की तकलिफों में लाभकारी है। अंतःस्त्रावि ग्रंथियाँ सुचारु रूप से कार्यान्वीत बनती है। हृदय से उपर के हिस्से में अधिक मात्रा में रक्तसंचार होने लगता है। जिस के कारण ज्ञानतंत्र सतेज और कार्यक्षम बनता है। थायरोड ग्रंथि को मालिश मिलती है तथा उसकी कार्यक्षमता भी बढ़ती है। थायरोड की समस्या में राहत मिलती है।

३. उड्डियान बंध

संस्कृत शब्द "उड्डियान" का अर्थ है उडना, उपर उठना, उर्ध्वीकरण। बंध यानी बांधना साधना के दौरान जब साधक के शरीरस्थ प्राण का उर्ध्वगमन होता है तब उड्डियान बंध स्वयं होने लगता है।

उड्डियानबंध करने के लिये पद्मासन, वज्रासन, सिद्धासन, सुखासन इत्यादी आसनो की पसंदगी कर सकते है। एवं उड्डियानबंध का अभ्यास खड़े रहकर भी किया जा सकता है। आरंभ के अभ्यासी को खड़े रहकर उड्डियान बंध का अभ्यास कर पेट की माँश पेशियों पर अंकुश लाने के बाद ही बैठक के आसन में उसका अभ्यास करना चाहिये।

उड्डियान बंध का शास्त्रो में उल्लेख

शिव संहिता अनुसार

नाभेरुर्ध्वमधश्चापि तानं पश्चिममाचरेत्।

उड्डयानबंध एष स्यात्सर्वदुःखौघनाशनः ॥
उदरे पश्चिमं तानं नाभेरुर्ध्वं तु कारयेत् ।
उड्डयानाख्योऽत्र बन्धोयं मृत्युमातंगकेसरी ॥

नाभी स्थल को उपर और नीचे, आस पास से अंदर की तरफ खींच कर आँतों को पीठ के तरफ अधिक समय खींच कर रखा जाता है जिसे देख कर एसा लगता है की वह पीठ की तरफ अंदर लगा हुआ है। उसे उड्डियान बंध कहा जाता है। इसके अभ्यास से पंचवायुओ का शुद्धिकरण होता है। यह बंध मृत्युरुप हाथी को वश में लानेवाले सिंह के समान है। इसके निरंतर अभ्यास से यौवन चिरस्थायी रहेता है और साधक जन्म मरण के आवा गमन से छूट जाता है।

योगशिखा उपनिषद्

कुम्भकान्ते रेचकादौ कर्तव्यस्तूड्डियानकः।
बन्धो येन सुषुम्णायां प्राणस्तूड्डियते यतः ॥
तस्मादुड्डियनाख्योऽयं योगिभिः समुदाहृतः
उड्डियानं तु सहजं गुरुणा कथितं सदा ॥
अभ्यसेत् तदतद्रस्तु वृद्धोऽपि तरुणो भवेत्।
नाभेरुर्ध्वमधश्चापि ताणं कुर्यादतन्द्रितः
षण्मासमभ्यसेन्मृत्युं जयत्येव न संशयः॥

कुंभक प्राणायाम के आखिर में और रेचक प्राणायाम की शुरूआत में योगी "उड्डियानबंध" करें; जिससे प्राणवायु सुषुम्णा नाडी में उड़ने लगता है, उसी कारण से योगीयोंने यह बंध को "उड्डियान" बंध यह नाम दिया है। यह उड्डियान बंध को गुरुओने सभी काल में सहज स्वाभाविक कहाँ है। इसलिए वह उड्डियान बंध का सदा सावधान रहकर अभ्यास करना चाहिए। जिससे वृद्ध भी तरुण बन जाता है। नाभि से उपर और नीचे वायु का तनाव करना, खींचना, ध्यान रख कर किया करें। दीर्घकाल अभ्यास करने से साधक स्वस्थ और दिर्घायु बनता है।

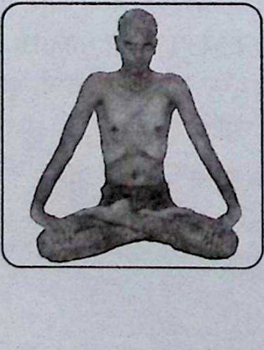

विधि : उड्डियान बंध करने के लिए अनुकूल आसन का चयन करें। दोनों घुटने जमीन पर लगाये। हथेलीयों को दृठता से घुटनो पर रखें। कोहनियाँ सीधी रखें। पूरक करें। पूर्ण रेचक कर बाह्य कुंभक में सीने को फुलाकर नाभि के स्नायुओं का संकुचन करें। पेट की माँश पेशियाँ अंदर की तरफ खींचे जिससे पेट मेरुदंड के साथ चिपक गया है ऐसा अहसास होगा है। यथा क्षमता अनुसार बाह्य कुंभक में टीके रहें। पेट के स्नायुओ को विपरीत क्रम से

क्रमशः शिथिल करें। पुनः पूरक करें।

सावधानी :

१. उड्डियान बंध का प्राथमिक अभ्यास खड़े रहकर या आगे घुटनो के बल बैठकर तथा दोनो हाथ जमीन पर रखकर करें। इस अवस्था में उड्डियान बंध का सफल अभ्यास होने के बाद ही ध्यानावस्थाके आसन में उड्डियान बंध का अभ्यास करें।

२. पेट का दर्द, एपेन्डिक्स, रक्तचाप, हृदय की बीमारी अथवा शस्त्र क्रिया करवायी हो तो चिकित्सक की सलाह ले कर ही अभ्यास करें।

३. उड्डियान बंध का अभ्यास करने से पूर्व पेट एवं आँते पूर्ण रूप से खाली होने चाहीये।

फायदे : यह प्रक्रिया में आमाशय कपड़े की तरह निचोडा जाता है। जिससे जमा हुए रुधिर फिर से प्रवाहित होने लगता है। पेट के अवयव सशक्त बनते है, जिससे कब्ज़, अपच, डायाबिटीस में लाभदायी सिद्ध होता है। वीर्यशक्ति के उर्ध्वीकरण में सहायक बनता है। ग्रंथि भेदन में सहायक बनता है। मंदाग्नि का नाश होता है, पाचन शक्ति बढ़ती है। अभ्यासु को सुंदर स्वास्थ्य, बल और शक्ति प्रदान करता है।

बंध वैज्ञानिक दृष्टिकोण से

- शारिरीक और मानसिक तनाव से मुक्ति के लिए संपूर्ण शरीर के स्नायुओ के संकोचन प्रसरण पर आज की अलग अलग चिकित्सा पद्धतियों भी ज़ोर देते है। यौगिक बंध के अभ्यास में पूरे शरीर की माँश पेशियो का संकोचन प्रसरण किया जाता है। जिससे तनाव से उद्‌भूत होते अन्य लक्षण जैसे कि अनिद्रा, चिड़चिडाहट, आवेश में आना, जल्द गुस्से हो जाना, जल्द सुस्त हो जाना, बेचेनी, अक्रियाशीलता इत्यादी रोका जा सकता है।

- जालंधर बंध के अभ्यास से पियुष ग्रंथि, थायरोड, पेराथायरोड और थायमस ग्रंथि के स्त्राव नियमित बनते हे। जब कि उड्डियान बंध में एड्रिनाल और पेन्क्रियास में तथा मूलबंध में जनन ग्रंथि के अंत स्त्राव नियमित बनते है। एवं सभी बंध का प्रभाव मस्तक में रही पियुष ग्रंथि तथा पिनीयल ग्रंथि पर भी पड़ता है। जो शरीर की सभी अंतः स्त्रावी ग्रंथियों के स्त्राव का नियमन करता है।

- बंध के सुदिर्घ अभ्यास से साँसो की गति कम होती है जिससे रक्त चाप कम होता है। धडकन धीरी और नियमित बनती है। जिसके परिणाम स्वरूप मस्तिष्क में आल्फा तरंग का व्याप बढ़ता है। जो साधक को मानसिक, शारिरीक और आध्यात्मिक उन्नति करवाता है।

मुद्रा

मुद्रा का अर्थ होता है "अंगो की विशिष्ट संरचना" मुद्रा के कई प्रकार शास्त्रो में वर्णीत है। जिस में करमुद्रा, चलित मुद्रा, नृत्यमुद्रा, ध्यान मुद्रा और खेचरी मुद्रा, शांभवी जैसी अजर - अमर बनाने वाली मुद्राओ का भी समावेश होता है। योग क्षेत्र में मुद्रा हठयोग का स्वरूप है। मुद्रा शरीर और मन को तालबद्धता से संचालित करता है।

योग साधना दौरान साधक की स्थिति और आवश्यकता के अनुसार मुद्रा का प्रादुर्भाव स्वयं होता है। मुद्रा साधना के विविध स्तर पर प्रगट हो कर साधक की साधना में सहायरूप बनती है। कुंडलिनी की जागृति के लिए भी मुद्रा का अभ्यास किया जाता है।

शास्त्रो में मुद्रा की संख्या

हठयोग प्रदिपीका में दस मुद्रा का उल्लेख पाया जाता है।

१. महामुद्रा	२. महाबंध	३. महावेध	४. खेचरी
५. उड्डीयान	६. जालंधरबंध	७. मूलबंध	८. वज्रोली
९.विपरीत करणी	१०.शक्ति चालीनी		

घेरंड संहिता में पच्चीस मुद्राओं का उल्लेख पाया जाता है।

१. महामुद्रा	२. नभोमुद्रा	३. उड्डीयान	४. जालंधरबंध
५. मूलबंध	६. महाबंध	७. महावेद्य	८. खेचरी
९. काकी	१०. योनि मुद्रा	११. वज्रोली	१२. शक्ति चालीनी
१३. तडागी	१४. माडुंकी	१५. शांभवी	१६. अम्बुधारणा
१७. वायु धारणा	१८. तेजधारणा	१९. नभोधारणा	२०. अश्विनी
२१. पाशीनी	२२. मातंगी	२३. भूजंगी	२४. पृथ्वी धारणा
२५. विपरीत करणी			

इस के अलावा अन्य शास्त्रो में योगमुद्रा, ब्रह्ममुद्रा, सिंह मुद्रा तथा अश्विनीमुद्रा का भी वर्णन देखा जाता है।

विपरीत करणी मुद्रा

विधि : यह मुद्रा में शरीर की स्थिति विपरीत बनती है इसलिए यह मुद्रा को विपरीत करणी

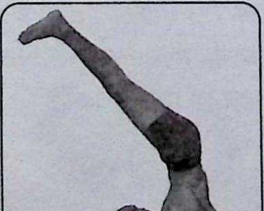

मुद्रा कहा गया है। योगशास्त्र के अनुसार नाभी में सूर्य और तालु में चंद्रमा स्थित है। चंद्रमा में स्थापित अमृत रस को नाभि में रहा सूर्य ग्रहण करता रहता है। जब की यह मुद्रा में यह स्थिति विपरीत बन जाती है। विपरीत करणी मुद्रा करने के लिए जमीन पर सीधे सो जाए। दोनों हाथो को शरीर के पास सीधा रखें। धीरे धीरे सर्वांगासन की स्थिति बनाएँ। उस के बाद गरदन से कमर तक

का हिस्सा सीधा रख कर पैरों को मस्तक की तरफ ६० डिग्री तक झुकाएँ। आँखो को मूँद कर चित्तवृत्ति पैरो के अंगूठे में स्थिर करें। सामान्यत: कंठ के चंद्रमा की उर्जा नीचे की नाभी का सूर्य ग्रसीत करता है, उसे विपरीत स्थिति में करने से कंठ के चंद्रमा की उर्जा की रक्षा होती है इसलिए यह मुद्रा को विपरीत करणी मुद्रा कहते है।

लाभ :

- योग की अलग अलग भुमिका में यह मुद्रा साधक की साधना में उपस्थित होती है।
- कुंडलिनी जाग्रत करने के लिए ज्यादा मूल्यवान है। यह मुद्रा साधक को शरीर में रहे सूर्य और चंद्रमा को मिलाने में मदद करती है।
- ब्रह्मचर्य के पालन में सहायता मिलती है।
- मेरुदंड और ज्ञानतंत्र की कार्यक्षमता बढ़ाता है।
- कुंडलिनी जाग्रत करने की योग प्रक्रिया में उपयोगी होने के कारण इस मुद्रा को योगमुद्रा भी कहा जा है।

सावधानि :

- उच्चरक्त चाप के दर्दी विपरित करणी मुद्रा का अभ्यास न करें अथवा चिकित्सक की सलाह ले कर एवं योगाचार्य की निगरानी में करें।
- सर्वाईकल, हर्निया, हृदय की शस्त्र क्रिया कराने वाले दर्दीओ को भी चिकित्सक की सलाह ले कर अभ्यास करना चाहिए।
- अगर इस मुद्रा का अभ्यासी अल्पाहारी है तो प्रदिप्त हुई उसकी जठराग्नि साधक के शरीर को ही भस्म कर देती है।

तडागी मुद्रा

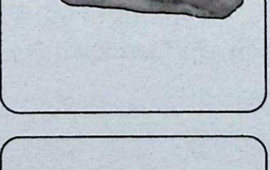

विधि : यह मुद्रा के अभ्यास में जमीन पर सीधे सो जाए। दोनों घूंटनो को मोड़ कर पंजो को आमने सामने रखें। दोनों एडीयो को सिवनी से लगाए। हाथ को जंघा के नीचे शरीर के पास रखें। यह स्थिति में पूरक कर आंतर कुंभक करें। वायु को पेट में भर कर पेट को उपर नीचे संचालित करें। जिसका दबाव सब से ज्यादा नाभी एवं पेढु पर बनेगा। पेट को ढ़ीला छोड़ रेचक कर उड्डियानबंध की तरह पेट को अंदर की तरफ खींचे। यथाक्षमता टीके रहने के बाद पेट को ढ़ीला छोड पूरक करें।

लाभ :

- कुंडलीनी जागरण प्रक्रिया दौरान यह मुद्रा स्वाभाविक रुप से साधक की साधना दौरान प्रगट होती है।

- पेट से सम्बन्धित बिमारी में राहत मिलती है।
- अनियमित मासिक, मासिक दौरान दर्द इत्यादी में राहत मिलती है।
- जठराग्नि प्रदिप्त होने से पाचन क्षमता बढ़ती है।
- पेट, पेढु तथा कमर की चरबी धीरे धीरे अभ्यास के साथ दूर हो जाती है।
- जंघा एवं नितंब के स्नायु सुदृढ़ बनते है।
- पीठ दर्द में राहत मिलती है।

मांडुकी मुद्रा

विधि : संस्कृत में "मांडुक" यानी मेढ़क। यह मुद्रा में योगी तालु में रहे चंद्रमा से स्त्रवीत अमृत रस का पान कर क्षुधा तृषा पर विजय प्राप्त करता है। मांडुकी मुद्रा करने के लिए अनुकूल आसन का चयन करें मुँह खोलकर दोनों जबड़ो में अंतर रखते हुए होंठो को बंद करें। जिह्वा को अंदर की ओर मोड़ कर तालु से लगाऐ। जिह्वा तालु की त्वचा को स्पर्श करें इस प्रकार गोल गोल घुमाये। यह स्थिति के कारण मुख में लार इकठ्ठा होने लगेगी उसे निगलते जाए। योगी यह क्रिया से तालु से स्त्रवित पोषक रस का पान करता है।

लाभ : खुराक को पचाने के लिए लाररस का हिस्सा महत्वपूर्ण है। यह अभ्यास के दौरान लाररस का स्त्राव अधिक होने के कारण पाचन क्षमता बढ़ती है। गले से सबंधित तकलिफें जैसी की थायरोड, टॉसिल्स, आवाज़ का भारी होना, बार बार आवाज़ का बेठ जाना, मुँह से बदबु आना इत्यादी में फायदा करती है।

घेरंड संहिता के अनुसार

वलितं पलितं नैव जायते नित्ययौवनम्।
न केशे जायते पाको यः कुर्यान्नित्यमाण्डुकीम्॥

जो मांडुकी मुद्रा का अभ्यास करता है उसके वलित पलित नहीं रहते, बाल सफेद नहीं होते और नित्य यौवन टीका रहता है।

हस्तमुद्रा

हमारी यह पांच उँगलीयों हमारे पाँच तत्वो का प्रतिनिधित्व करती है। हमारा शरीर पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश से बना है। और ब्रह्मांड भी पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश पाँच तत्वो से बना है ।यह तीसरी उँगली अनामिका पृथ्वीतत्त्वकी उर्जा का केन्द्र है। आख़िरी छोटी उँगली कनिष्ठिका जलतत्त्व का केन्द्र है। हमारे शरीरमें हड्डीयाँ इत्यादी पृथ्वीरूप और रक्त, प्रवाही सब जलरूप है। अँगूठा अग्नितत्त्व का केन्द्र है। प्रथम उँगली तर्जनी वायुतत्त्व का केन्द्र है और दूसरी उँगली मध्यमा आकाश तत्त्व का केन्द्र है। दो प्रकार की मुद्राएँ हमे करनी है। एक उँगली को अंगुठे से स्पर्श करना है और दूसरे में उँगली को मोड़कर अंगुठे के मूल में स्पर्श करना है और अँगूठे को उपर से थोड़ा दबाना है।

१. ज्ञानमुद्रा

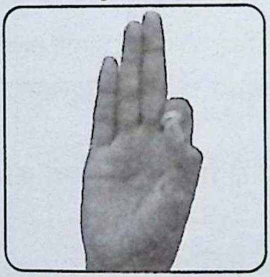

विधि : पहली उँगली को आगे की ओर मोड़कर और अँगूठे को स्पर्श करना है और बाकी की तीन उँगलीयों को सीधा रखें। यह मुद्रा को ज्ञानमुद्रा कही जाती है।

लाभ :

१. आपकी स्मरणशक्ति, याददास्त बढ़ेगी।

२. अनिंद्रा यानी कि जिस को निंद की दिक्कत होगी उसे निंद अच्छी आएगी।

३. शिर भारी रहता होगा तो हलका होने लगेगा। मस्तिष्क के स्नायु मजबूत बनते है और अध्यात्म शक्ति का विकास होता है।

अभ्यास समय : ५ से १५ मिनट तक। विशेष स्थिति में ४५ मिनट।

२. वायुमुद्रा

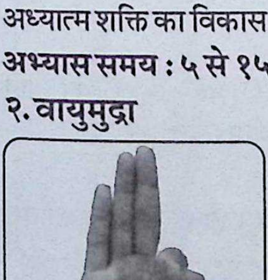

विधि :

तर्जनी को अँगूठे के मूल में लगाकर अँगूठा तर्जनी के उपर रखकर दबाए तथा बाकी तीन ऊँगलीया सीधी रखें। इसे वायुमुद्रा कहते है।

लाभ :

१. वायुमुद्रा से वायु की दिक्क़त दूर होती है।

२. संधिवा, घुंटने का दर्द, सायटिका में राहत मिलती है।

अभ्यास समय : ५ से १५ मिनट तक। विशेष स्थिति में ४५ मिनट।

३. आकाशमुद्रा

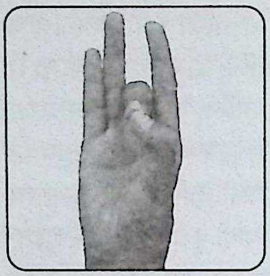

विधि : आकाश तत्ववाली मध्यमा ऊँगली को थोड़ा आगे झुकाकर अँगूठे से स्पर्श करें तथा बाकी की ऊँगलीयाँ सीधी रखनी है। इसे आकाशमुद्रा कहते है।

लाभ :

१. आकाश मुद्रा का अभ्यास करने से हड्डीयों में होती दिक्क़ते दूर होनेमें सहायता मिलती है।

२. कान का बहरापन दूर होता है।

३. आकाशमुद्रा से शरीर में हलकापन(लघुता) आता है। क्योंकि आकाश सब से सूक्ष्म और हलका है। व्यक्ति में सूक्ष्मता आती है।

अभ्यास समय : ५ से १५ मिनट तक। विशेष स्थिति में ४५ मिनट।

४. शून्यमुद्रा

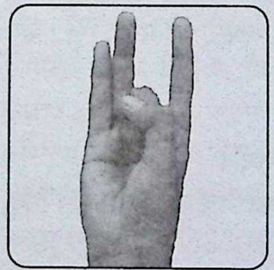

विधि : मध्यमा ऊँगली को मोड़कर अँगूठे के मूल में लगाए तथा अँगूठे को मध्यमा के उपर रखकर थोडा दबाए यह शून्यमुद्रा कहलाती है।

लाभ : १. कान की दिक्क़ते दूर होती है जैसे कि शब्दो का स्पष्ट सुनाई ना पड़ना इत्यादि।

२. मसूडे मजबूत बनते है। गले के रोगो में लाभप्रद है।

अभ्यास समय : ५ से १५ मिनट तक। विशेष स्थिति में ४५ मिनट।

५. पृथ्वीमुद्रा

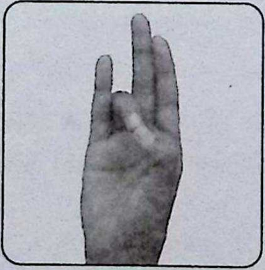

विधि : तीसरी ऊँगली अनामिका(पृथ्वी) उँगली को आगे झुकाकर अँगूठे से स्पर्श करें। इसे पृथ्वीमुद्रा कहते है।

लाभ :

१. शरीर में दुर्बलता रहती हो तो वह दूर होकर शरीर ताकतवर, स्फुर्तिला होने लगेगा।

२. दुर्बल व्यक्ति हृष्ट–पुष्ट (वजन बढ़ना) होने लगेगा। पाचन क्रिया को वेग मिलता है। सात्विकगुण का विकास होता है।

अभ्यास समय : ५ से १५ मिनट तक। विशेष स्थिति में ४५ मिनट।

६. सूर्यमुद्रा

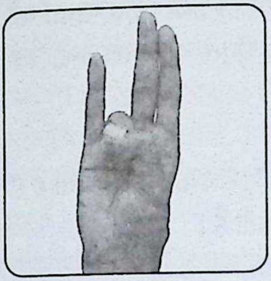

विधि : अनामिका उँगली को मोड़कर अँगूठे के मूल में स्पर्श कराए तथा अँगूठे को अनामिका के उपर रखकर थोड़ा दबाए उसे कहते है सूर्यमुद्रा।

लाभ :

१. शरीर में उष्मा पेदा होती है, उष्णता पेदा होती है।

२. डायाबीटीस और यकृतकी दिक्क़त हो उसमें लाभप्रद है।

३. मोटापा घटता है। कोलेस्ट्रोल घटता है।

अभ्यास समय : ५ से १५ मिनट तक। विशेष स्थिति में ४५ मिनट।

७. जलमुद्रा (वरुण मुद्रा)

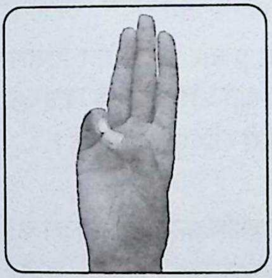

विधि : चोथी उँगली कनिष्ठिकाको थोड़ा आगे झुकाकर अँगूठेसे जोड़ दिजीए। उसे जलमुद्रा या वरुणमुद्रा कहते है।

लाभ :

१. जिसके शरीर में शुष्कता / ड्रायनेस रहती हो रुखापन आ गया हो तो शुष्कता ठीक हो जाती है।

२. त्वचा संबंधित समस्या, रक्तविकार, मुँहासे आदि दूर होते है।

अभ्यास समय : ५ से १५ मिनट तक। विशेष स्थिति में ४५ मिनट।

८. अपानमुद्रा

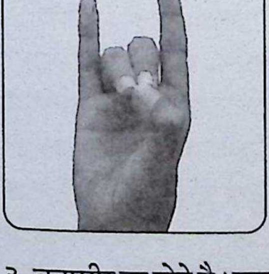

विधि : पहली और आख़िरी उँगलीयों को छोड़कर बीच की दो उँगलीयाँ मध्यमा और अनामिका को जोड़कर आगे की ओर झुकाकर अँगूठे से जोड़ दो उसे कहते है अपान मुद्रा।

लाभ :

१. शरीर और नाड़ी की शुद्धि करती है।

२. कब्ज दूर होती है। अपानमुद्रा मूत्रावरोध और कीडनी के लिए लाभप्रद है।

३. बवासीर दूर होते है। वायुविकार, दांतो के दोष और डायाबीटीस दूर होते है।

अभ्यास समय : ५ से १५ मिनट तक। विशेष स्थिति में ४५ मिनट।

९. प्राणमुद्रा

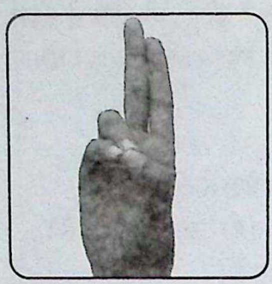

विधि : आख़िरी दो उँगलीयाँ अनामिका और कनिष्ठिका को जोड़ -कर आगे की ओर झुकाकर अँगूठे को स्पर्श करें, उसे कहते है प्राणमुद्रा।

लाभ :

१. प्राणमुद्रा शरीर को बलिष्ठ करती है। मन को शांत करती है।

२. शरीर की रोगप्रतिकारक शक्ति बढ़ाती है।

३. आँखो की क्षमता बढ़ती है।

४. लंम्बे उपवासकाल के दौरान भूख प्यास सताती नहीं है।

अभ्यास समय : ५ से १५ मिनट तक। विशेष स्थिति में ४५ मिनट।

१०. लिंगमुद्रा

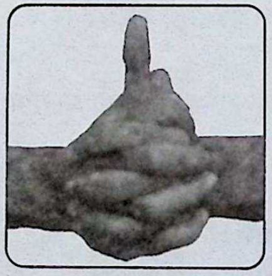

विधि : दो हाथ की उँगलीयों को इस प्रकार इकड्ठी कर दिजीए कि उँगलीयाँ क्रमशः एक दूसरे हाथ की उँगलीयों के बाद रहे और बाँये हाथ का अँगूठा उपर रखे, उसे लींगमुद्रा कहते है।

लाभ :

१. शरीर में उष्णता पेदा करती है और शरीर के बहुत विकारो का शमन करती है।

२. शरदी, खांसी, सायनस, दम और लॉ-ब्लडप्रेशर में लाभप्रद है। कफ को सूखाती है।

अभ्यास समय : ५ से १५ मिनट तक। विशेष स्थिति में ४५ मिनट।

षट्कर्म

"षट्" अर्थात् ६ और कर्म" यानी क्रिया अथवा कर्म। योगशास्त्र में शरीर के आंतरीक अवयव की शुद्धि के लिए ६ प्रकार के शोधन कर्म दर्शाए गये है। जिसे षट्कर्म अथवा शुद्धिकर्म अथवा शोधन कर्म के नाम से जाना जाता है। योग का अभ्यास करने से पहेले शरीर में रहे वात, पित्त और कफ रूपी मल, अशुद्धियों की शुद्धि करना जरूरी हे। जब तक नाड़ी में जमे मलो की शुद्धि नहीं होती तब तक प्राण की निर्बाध गति नाड़ीयों में नहीं होती।

नाड़ीयों की शुद्धि का महत्व हठयोग प्रदिपीका में इस प्रकार है।

मलाकुलासु नाडीषु मारुतो नैव मध्यगः।
कथं स्यादुन्मनीभाव कार्यसिद्धिः कथं भवेत्॥

जब तक नाड़ीयाँ मल से व्याप्त है तब तक प्राणवायु मध्यगामी नहीं बन सकता। इसलिए उन्मनी भाव का प्रादुर्भाव नहीं होता तो कार्य सिद्धि किस प्रकार हो सकती है।

हठयोग प्रदीपिका अनुसार

धोतिर्बस्तिस्तथा नेति त्राटक नौलिकी तथा।
कपालभाति श्चैतानि षट्कर्माणि प्रचक्षते॥

धौति, बस्ति, नेति, त्राटक, नौली और कपाल भाति यह छ प्रकार के कर्मो को योग शास्त्र में षट्कर्म कहे जाते है।

१. नेति - रबर केथेटर या सूत्र अथवा जल से अभ्यास किया जाता है। नेति का प्रयोग मुख्यत: आँख, कान, नाक और गले की शुद्धि के लिए किया जाता है।

२. धौति - ११ अथवा २२ फीट लंबी और चार उँगुलि चोड़ी मलमल से बनी होती है, जिसकी सहायता से अन्ननली और जठर की शुद्धि के लिए प्रयोग किया जाता है।

३. नौलि - पेट में रहे रेक्टाइल स्नायु के चालन के द्वारा उदर के अंगो की मालिश और शुद्धि के लिए प्रयोग किया जाता है।

४. बस्ति - जल और वायु की सहायता से आँतो की शुद्धि के लिए प्रयोग किया जाता है।

५. कपालभाति - तीव्र श्वासोच्छवास की प्रक्रिया से मस्तिष्क और वायु कोटरो (सायनस पोईन्ट) की शुद्धि के लिए प्रयोग किये जाते है।

६. त्राटक - आँखो की शुद्धि और रोशनी की वृद्धि के लिए प्रयोग किया जाता हे।

१. नेति :

शरीर के उर्ध्वभाग में रहे कफ को दूर करने के लिए नेति का प्रयोग करना उचित है। नेति के प्रयोग से आंख, नाक, कान तथा गले की तकलीफो में राहत मिलती है।

नेति के मुख्य दो प्रकार है : (१) सूत्रनेति (२). जलनेति

१. सादी नेति (केथेटर नेति)

नेति प्रक्रिया दर्शाते हुए घेरण्ड संहिता में कहा गया है।

वितस्तिमात्रं सूक्ष्मसूत्रं नासानाले प्रवेशयेत् ।
मुखन्निर्गमयेत्पश्चात्ोच्यते नेति कर्म तत्॥

एक हाथ लंबा मुलायम सुक्ष्म सूत्र को नासारन्ध्र में प्रवेश कर मुख से बाहर निकालने की क्रिया को नेति कहते है।

शुरुआती अभ्यासी को सर्व प्रथम रबर केथेटर का प्रयोग करना चाहिये केथेटर की लंबाई १२ से.मी एवं गोलाई ३मी.मी जितनी होती है। उसका एक सिरा बंध और एक खुला होता है । बंध सिरे को नाक में डाल कर नेति प्रयोग करना चाहिये। केथेटर अलग-अलग नंबर के होते है जैसे कि ३,४,६ ईत्यादि ।

विधि : नेति कर्म के लिये दोनों पैरों को एक दूसरे से डेढ़ से दो फीट की दूरी पर रखें। कमर से थोड़ा सा आगे की ओर झूके। मस्तक को सीधा रखें। पूरक करते हुए नेति के मुलायम सिरे को जिस नासारंध्र में वायु संचार सुचारु रूप से चलता हो उस में प्रवेश कराए। अगर छींक आये या गुद्‌गुदी हो तो उस स्थिति में रूक कर कुंभक करे। फिर पुनः प्रयास करे। वह सिरा नाक के भीतर प्रवेश कर जिह्वा के पीछे गले में खुलने वाले मार्ग से होकर गले में आएगा। मुख में प्रथम अंगुलि और अंगुठा डाल कर वह सिरा पकड़ कर उसे धीरे से मुख मार्ग से बाहर निकाले जल्दबाज़ी न करे। इस प्रक्रिया को सादीनेति कहते है।

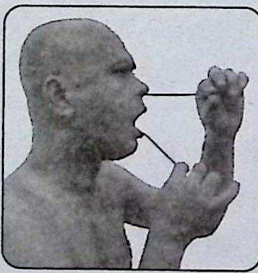

घर्षण नेति :

नेति का जो छोर गले में आया है उसे एक हाथ से पकड़कर तथा नाकवाला छोर दुसरे हाथ से पकड़कर रखें। मस्तक सामने की ओर रखकर छ से सातबार नेति को ऊपर नीचे धीरे धीरे घर्षण कर मुखमार्ग से बाहर निकाले। इस प्रक्रिया को घर्षण नेति कहते है।

नेति कर्म के लाभ

नेति क्रिया में नेति के साथ चिपक कर नाक और गले की अशुद्धियाँ श्लेष्मा व कफ बाहर आ जाते है। जिस से पूर्णतः नाक व ऊपरी श्वास नली की शुद्धि होती है। नेति कर्म दृष्टि

को तेज बनाती हैं। जुकाम, सरदर्द, थायराइड, टॉसिल्स, गले की अन्य तकलीफों में सहायभूत बनती है। कान से संबधित बीमारियों में फायदा पहुँचाती है।

सावधानीयाँ, अंतराय व उपाय

१. नेति क्रिया करने से पूर्व नेति को नमक वाले गर्म पानी से धोले।

२. दूसरे व्यक्ति द्वारा प्रयोग की गयी नेति का प्रयोग न करे ।

३. नेति कर्म के बाद नेति को जंतुरहित जगह पर रखे।

४. प्रात:काल और सायंकाल नेति के लिये उपयुक्त है क्योंकि उस समय त्रिदोष का प्राबल्य अधिक होता है।

५. षट्कर्मो का अभ्यास केवल अभ्यास के शुरूआती दिनों में प्रतिदिन करे, बाद में १५ दिन में एक बार प्रयोग करें।

६. नेति कर्म में यदि त्वचा छील जाये, खून निकले तो गाय के शुद्ध घी के नस्य का नाक में प्रयोग करे।

७. नेति क्रिया के दौरान छींक ज्यादा आने लगे तो कुछ क्षणों के लिये दीर्घ पूरक कर आभ्यांतर कुंभक का प्रयोग करे, बाद में फिर से नेति कर्म का अभ्यास करे।

२. जलनेति : जलनेति में सूत्र की जगह पानी का प्रयोग नाक एवं गले की आंतरीक अवयवो की शुद्धि के लिए किया जाता है। जलनेति करने के लिए जलनेति पात्र प्रयोग किया जाता है।

साधन : नेतिपात्र, गरम पानी, छलनी, सैंधा नमक, रूमाल

विधि : जलनेति दो प्रकार की स्थिति में हो सकती है। खड़े रहकर तथा बैठ कर। हम यहाँ पर खड़े रह कर नेति का अभ्यास करेंगे। जलनेति करने से पूर्व आँखो को ठंडेपानी से धोए। अब दोनो पैर को आधे फीट की दूरी पर रखकर खड़े रहे। एक खाली पात्र में शरीर के तापमान

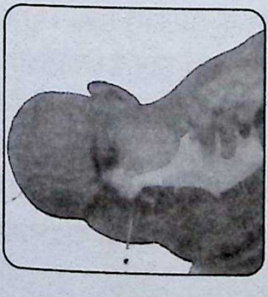

जितना गर्म पानी ले। उसमें सैंधा नमक डाले। बाँयी नासिका में जलपात्र की नली को रखें। गरदन को दाहिनी ओर झुकाकर मुँह को थोडा खुला रखें, जिससे मुँह के द्वारा हवा चलती रहे। अब जलपात्र के पानी को धीरे धीरे बाँयी नासिका में जाने दे। बाँयी नासिका से दाहिनी नासिका में सरलता से बाहर आ जायेगा। इसी प्रकार दुसरी नासिका से भी यह प्रक्रिया दोहराए।

जलनेति के बाद शरीर को थोडा सा आगे झुका कर नासिका में बचे पानी को बाहर निकाल दे। आँखो को ठंडे पानी में डुबोकर धो ले। आखिर में नासिका में बाकी रहे पानी को कपालभाति के प्रयोग से बाहर निकाल दे।

लाभ :

१. आंखो के स्वस्थ्य के लिए उत्तम प्रक्रिया है।

२. शिर दर्द, साइनस, माईग्रेन इत्यादी में आराम मिलता है।

३. कफ, पित्त जन्य प्रकोप शांत होता है।

४. सुंदरता की प्राप्ति होती है।

घेरण्ड संहिता अनुसार :

न जायते वार्द्धकं च ज्वरा नैव प्रजायते ।
भवेत्स्वच्छन्द्रदेहश्च कफदोषं निवारयेत् ॥

वार्द्धक्य नहीं आता। ना जरा, जीर्णता आती है। शरीर स्वस्थ और सुदृढ बनता है। इस प्रकार कफ दोष का निवारण करना चाहिए।

२. कपालभाति

कपालभाति शोधन कर्मो का एक प्रकार है, यद्यपि उसका उल्लेख प्राणायाम के रुप में किया जाता है। कपालभाति की प्रक्रिया भस्त्रिका की प्रक्रिया से काफी मिलती झुलती है। फिर भी उसकी विधि एवं फायदे भिन्न है। कपालभाति शब्द "कपाल" और "भाति" दो शब्द मिल कर बनता है। जिसका अर्थ होता है मस्तक को चमकाना अथवा प्रकाशित करना। कपालभाति प्रक्रिया करने से मस्तिष्क में रही अशुद्धियाँ दूर होती है। घेरंड संहिता में कपालभाति को "भालभाति" के नाम से दर्शाया गया है।

विधि : कपालभाति के लिए अनुकूल आसन का चयन करें। शरीर सीधा रखें। दोनों हथेलिया घूंटनो पर रखें। जिससे कोहनिया सीधी, पेट तथा फेंफड़े खीचे हुए रहेगे। शुरूआत शिघ्र रेचक से करें। और सहज उत्पन्न होते पूरक से समाप्ति करें। यह क्रिया में श्वासोच्छवास की गति अटपटी होने के कारण किताब पढकर या देख कर अनुसरण न करें। किन्तु किसी योगाचार्य की निगरानी में सिखे।

दोनों नासिका से लयबद्ध तीव्र गति से रेचक करना है। जिसके परिणाम स्वरूप पूरक सहज और स्वयं हो जायेगा। फिर से तीव्र गति से रेचक कर पूरक स्वयं होने दे। यह रेचक पूरक की प्रक्रिया दौरान पेट की दिवार ध्रुत गति से लयबद्ध सहज अंदर बाहर होगी। शुरूआती अभ्यासु साधक कपालभाति का अभ्यास २० से ३० रेचक तक का एक आवर्तन करें। जिसका अभ्यास बढाते बढाते १२० अथवा क्षमतानुसार श्वसन किया जा सकता है। इस प्रकार २ से ५ आवर्तन तक कपालभाति का अभ्यास करें। प्रत्येक आवर्तन के बाद थोडी क्षणो के लिए विश्राम करें।

लाभ :

- आध्यात्मिक विकास के लिए एवं कुंडलिनी जागरण के लिए आवश्यक है।
- पाचनतंत्र के अवयवो को मालिश मिलती है। जो जठराग्नि को प्रदिप्त करता है। पाचन क्षमता बढाता है। कब्ज दूर होती है।

- रेचक और सहज पूरक के कारण होती फेफड़ो की लयबद्ध चाल से उसका विकास होता है। श्वास उच्छवास के विनिमय का व्याप बढ़ता है। दमा, क्षय, ब्रोंकाइटीस, कफ वृद्धि से पिड़ीत व्यक्तियों के लिए वरदान रूप है।
- ज्ञानतंत्र के लिए लाभकारी है।
- शरीर में रहे त्रिदोष का नाश कर चहेरे पर चमक आती है।
- मानसिक थकान, तनाव, आलस्य दूर होता है।
- कुंभक करने की क्षमता बढती है।

सावधानीः

- अभ्यास के दौरान चक्कर आए, गभराहट हो तो अभ्यास फौरन बंद करें।
- दमा के दर्दीओ को दमा के दोहरे के दौरान कपालभाति का प्रयोग न करें।
- उच्च रक्तचाप, हर्निया, हृदय रोग के दर्दी अभ्यास न करे।

३. धौति

पाचन तंत्र के समग्र अवयव जैसे की मुख, अन्ननली और जठर की शुद्धि करनेवाली क्रिया धौति प्रक्रिया के नाम से पहचानी जाती है।

वस्त्रधौति

इस प्रक्रिया में होजरी, अन्ननली और मुख मार्गकी शुद्धि वस्त्र द्वारा की जाती है। जो वस्त्र धौति कहलाता है।

घेरंड संहिता अनुसार

चतुरङगुलविस्तारं सूक्ष्मवस्त्रं शनैर्ग्रसेत् ।
पुनः प्रत्याहरेदेतत्प्रोच्यते धौतिकर्मकम् ॥

चार उँगल चौड़ा और पतला वस्त्र धीरे धीरे निगलना चाहिए तथा पुनः धीरे धीरे बाहर निकालना चाहिए। यह प्रक्रिया वासधौति / वस्त्र धौती कहलाती है।

विधि : इस प्रक्रिया में चार उँगल चौड़ा और ग्यारह से बाईस फीट लंबा मलमल का वस्त्र, जिसके चारो छोर सीले हुए हो उसका उपयोग किया जाता है। उपयोग में लाने से पहले उसे गरम स्वच्छ पानीमें अच्छी तरह से धो ले। सामान्य तौर पर धौति का अभ्यास ऊकडु बैठकर

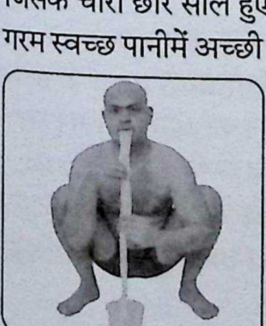

किया जाता है। आसन में बैठने के बाद एक पात्रमें पानी लेकर उसमें वस्त्र धौति डाले। उसके एक छोर को मोड़ कर छोटी सी गोली बना ले। जिह्वा को बाहर निकाल कर गोली बनाई हुइ धौति का छोर जिह्वा के भीतर रखें। मुँह बंद कर वस्त्र को निवाले की भाँति निगलते हुए उसे नीचे उतारे। बीच में धौति फँसे तो थोड़े पानी के घूँट पीए जिससे वह सरलता से गले के नीचे

सरकने लगेगी। एक फीट जितनी धौति बाहर रहे तब तक उसे निगलते रहे। उसके बाद उसे आगे झुककर धीरे धीरे वापस बाहर निकाले। बहार निकालते समय जल्दबाज़ी कर धौति को खींचे नहीं। धौति बाहर निकलते हुए फँसे तो थोड़े घुँट पानी पी ले जिससे उसमें पड़ी गाँठ खुल जाएगी।

सावधानी, अंतराय और उपाय :

१. धौति के चारो छोर सीले हुए होने चाहिए।

२. धौति प्रक्रिया के पूर्व धौति को अच्छी प्रकार से गरम पानी में धो ले।

३. धौति निकलते हुए फँसे तब निगलने की प्रक्रिया रोककर पूरक कर आंतर कुंभक करें। आंतर कुंभक में धौति को निवाले की भाँति गले से निचे उतारते जाए।

४. कई बार ऐसा होता है की धौति मुँह में रखते ही बहार आ जाती है। तब धौति को मुँहमें बाँयी या दाहिनी ओर रखें।

५. उल्टी जैसा लगे तब कुछ समय रुककर फीर धौति निगलना आरंभ करें।

६. धौति निगलने के बाद बाहर निकालने के लिए शीघ्रता न करें।

७. धौति को २० मिनट से अधिक पेटमें न रखें।

८. धौति का अभ्यास खाली पेट करना हितावह है।

९. धौति क्रिया के अभ्यासु को भोजनमें नमक मीर्च का प्रयोग करना वर्जित है।

१०. योगनिष्णांत की देखरेख के बिना स्वयं पुस्तक पढकर षट्कर्म न करे।

लाभ :

१. अन्ननली और जठर की सफाइ होती है।

२. कफ पित्तको बाहर निकालता है, धातु को सम रखता है।

३. ऋतु परिवर्तन होने के साथ धौति का अभ्यास कफ और पीत्त के प्रकोप से रक्षण करतां है।

४. खांसी, दम, तील्ली के विकार, कफसे उत्पन्न हुए अनेक प्रकार के रोग दूर होते है।

(१) वमन धौति / गजकरणी

हठयोग प्रदीपिका में गजकरणी का वर्णन इस प्रकार दिया गया है।

> उदरगतपदार्थमुद्वमंति पवनमपानमुदीर्य कंठनाले ।
> क्रमपरिचयवश्यनाडीवक्रा गजकरणीति निगद्यते हठज्ञै ।।

अपानवायु को उपर कंठ तक उठाकर पेट में गए पदार्थ समूह का उद्वमन करना। उसके क्रमश: अभ्यास से नाडी समूह को वश किया जा सकता है उसे गजकरणी कहते है।

नमकवाले गरम पानी से अन्ननली एवं जठर की शुद्धि प्रक्रिया को गजकरणी अथवा कुंजर प्रक्रिया कहते है। जिस प्रकार गज अर्थात् हाथी सूँढ में पानी भरकर वापस बाहर फेंकता है उसी प्रकार गजकरणी में भी पानी पी कर बाहर निकालना है।

वमनकर्म भी गजकरणी के जैसे ही किया जाता है। परंतु वमन कर्म में पानी को बाहर निकाल ने के लिए उँगलीयों की सहायता से जिह्वामूल पर घर्सण किया जाता है। जब कि गज करणी में आकंठ पानी पीकर स्वयं बिना किसी माध्यम के पानी बाहर फेंका जाता है।

विधि : स्वच्छ पानी में सैंधा नमक डाल के शरीर के तापमान जितना गरम करके छान ले। उसके बाद जितना हो सके इतनी शीघ्रता से एक ग्लास पानी पीए। इसी प्रकार दूसरा ग्लास पानी भी शीघ्रता से पीए। तीन लीटर जितना पानी पीकर आमाशय को पानी से भर दे एवं थोडा अधिक पानी पीकर गले तक भर ले। तत् पश्चात दोंनो पैर खोल कर कमर से झुककर मस्तक को पीठ के समांतर रखें। दोंनो हाथ घूंटनो पर रखें। अब रेचक करते हुए नाभिसे ऊँहकार करते हुए पेट की माँश पेशियाँ सिकुड़े। इस प्रकार करने से पेट का पानी अंदरसे अशुद्धियों के साथ अपने आप बाहर आ जाता है। जब तक सारा पानी बाहर ना निकल जाए तब तक यह प्रक्रिया करते रहे। इस प्रक्रिया में प्रथम कफ, पित्त और अंत में गंध विहिन वायु बाहर निकलेगा। डकार गजकरणी प्रक्रिया की पूर्णाहुति दर्शाता है। आखिर में आँख, नाक, मुँह, जिह्वा की सफाई करके गरम पानी से कुल्ले कर ले।

लाभ :

१. कुपीत वात, पित्त और कफ दूर करता है।
२. धातुओं को सम रखता है।
३. जठर में एकत्रित हुए दूषित द्रव्यो को बाहर निकालता है।
४. जुकाम, अस्थमा एवं एसिडीटी में राहत देता है।
५. पेट के स्नायुओ पर नियंत्रण स्थापित होता है।

सावधानी :

१. पेट अथवा आमाशय का हर्निया, उच्च रक्तचाप और ह्दय संबंधित किसी व्याधिमें इस का अभ्यास ना करें।
२. ऐसीडिटी में गजकरणीका प्रयोग ना करें ।

४. बस्ति

बस्तिकर्म बड़े आँतो का प्रक्षालन कर्म अर्थात् उसे धोने अथवा शुद्ध करने का कर्म है। **बस्ति के मुख्य दो प्रकार है। १. जलबस्ति २. शुष्क बस्ति**

१. जल बस्ति :

नाभि डूब जाए इतने पानी में उत्कटासनमें बैठे। गुदाद्वार का आकुंचन प्रसरण करें ताकि पानी स्वयं गुदामार्गमें आकर्षित हो जाए। इसे जल बस्ति कहते है।

२. आधुनिक जलबस्ति :

विधि १ : (साधन : एनिमा पोट)

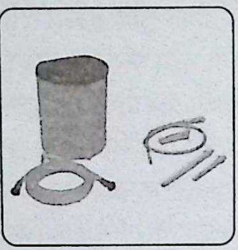

आधुनिक जलबस्तिमें विभिन्न प्रकार के साधनो का प्रयोग किया जाता है। जिसमें जल को प्रयत्न पूर्वक आकर्षित करना नहीं होता। इस बस्ति के लिए साधन को दिवार पर २ से ३ फीट की ऊँचाई पर लटकाए। साधक को पहले बालासन में सूलाया जाता है। उसके बाद दिवार पर टाँगे साधन से निकलने वाली रबर की नली के आगे के भाग में तेल अथवा घी लगाकर मुलायम बनाने के बाद गुदामार्ग में प्रवेश करवाया जाता है। साधन में भरा गया पानी रबर नली के द्वारा गुदा मार्गमें चढ़ाया जाता है। बाद में नली निकाल कर कुछ समय विश्राम के पश्चात् मलविसर्जन की क्रिया संपन्न की जाती है।

विधि : २ (साधन : एनिमा पंप)

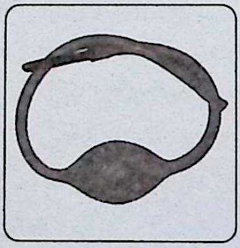

पैर खोलकर उकडु बैठे। बस्ति पंप की नोझल वाली नली गुदा मार्ग में दाखिल करें तथा अन्य खुला छोर पानी से भरे जलपात्र में डूबाएँ। अब साधक स्वयं पंप के द्वारा पानी गुदा मार्ग में दाखिल करेगा। पानी चढ़ाने के बाद नली को निकालकर कुछ समय विश्राम के पश्चात् मलविसर्जन की क्रिया संपन्न की जाती है।

लाभ :

१. बस्ति कर्म प्रभाव से पेट में गोला चढ़ना, जलोदर एवं वात, पित्त और कफ जन्य दोषो का नाश हो जाता है।

२. जठराग्नि प्रदिप्त बनती है।

३. प्रमेह एवं पुरानी कब्ज़ दूर होती है।

लाभ : थायरोइड की समस्या में लाभदायी है। साइटिका के दर्द में आराम देता है। कब्ज़ दूर करता है।

५. त्राटक

किसी एक निश्चित स्थान पर अथवा वस्तु पर अपलक दृष्टि से ध्यान करना त्राटक कहलाता है।

हठयोग प्रदिपीका अनुसार

निरीक्षेन्निश्चलदृशा सूक्ष्मलक्ष्यं समाहितः।
अश्रुसम्पातपर्यन्तमाचार्यैस्त्राटकं स्मृतम्॥

एकाग्र बन स्थिर दृष्टि से सूक्ष्म बिंदु को अश्रूपात होने तक अपलक दृष्टि से निहारना उसे त्राटक कहते है।

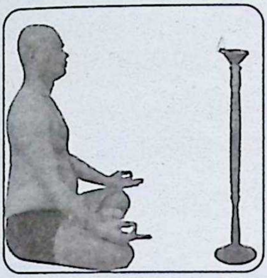

लाभ :

एकाग्रता बढ़ती है। संकल्प शक्ति बढ़ती है। आंखो की रोशनी बढ़ती है। चित्त की शुद्धि होती है, त्राटक के अभ्यास से विशिष्ट शक्तियाँ पेदा होती है।

हठयोग प्रदिपिका अनुसार

मोचनं नेत्ररोगाणां तन्द्रादीनां कपाटकम्।
यत्नतस्त्राटकं नित्यं यथा हाटकपेटकम्॥

त्राटक के अभ्यास से नेत्र रोग नष्ट होते है और तन्द्रा तथा आलस्य शरीर में प्रवेश नहीं करते है। त्राटक को गुप्त रखना चाहिए।

सावधानी :

१. आंखो पर आवश्यक दबाव या तनाव ना बने उसका ध्यान रखे।

२. त्राटक का अभ्यास दृष्टिशुद्धि तथा चित्तशुद्धि के लिये किया जाता है।

३. जिसको आँख की तकलीफ हो उनको गुरु के मार्ग दर्शन में त्राटक का अभ्यास करे।

४. त्राटक के दौरान आंख से निकलते पानी को धीरे से पोंछ ले तथा आंखो को मसले नहीं।

६. नौली

उदर में रहे रेक्टाइल स्नायुओ को अलग कर घुमाया जाता है। इसलिए इसे नौलि क्रिया कही जाती है।

विधि : दोनो घुंटनो को थोडा मोड़कर आगे की ओर झुककर खड़े रहे। दोनों हाथ घुंटनो पर

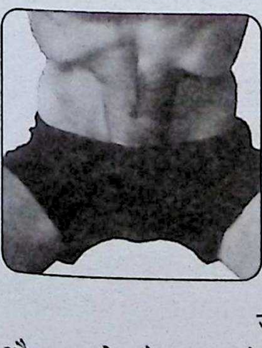

रखें। दीर्घ पूरक करें और रेचक करते हुए उड्डियानबंध बाँधे। बाह्य कुंभक में घुंटनो पर और बल देकर उदर के मध्य स्नायुओ को बाहर की तरफ धक्का मारे। पेट के मध्य से दो स्नायु आगे की तरफ आयेगें। इस क्रिया को मध्य नौलि कहा जाता है। मध्यनौलि के अभ्यास में निपुणता प्राप्ति होने के बाद वामनौलि और दक्षिण नौलि का अभ्यास किया जाता है। मध्यनौलि के बाद दाहिनी जंघा पर अधिक दबाव दे और बाँये हाथ से बाँयी जंघा पर दबाव हलका करें। शरीर को कमर से थोड़ा सा दाहिनी और झुकाये और मध्य नौलि को दाहिनी ओर लाये। इसे दक्षिण नौलि कहा जाता है। इसी

प्रकार बाँयी तरफ प्रयास कर वामनौलि कि जाती है। (दक्षिण –दाहिनी, वाम – बायी)

वामनौलि और दक्षिणनौलि के अभ्यास में निपुणता प्राप्त होने के बाद नौलि को चक्राकार घुमाने का अभ्यास करें। जिसे नौलि अथवा लौलिकी कहा जाता है।

नौलि कौन नहीं कर सकता है।

१. पेट के किसी अवयव में क्षय रोग हुआ हो तो उन्हें नौलि का अभ्यास नहीं करना चाहिये।

२. पंद्रह वर्ष से कम आयु के बालको को नौलि अभ्यास नहीं करना चाहिये।

३. ब्लड प्रेशर के दर्दी को, हृदय रोगीयों को नौलि अभ्यास नहीं करना चाहिये।

लाभ :

१. पेट के अवयव और स्नायु स्वस्थ और कार्यक्षम बनते है।

२. प्राणयाम का एक्य साधाता है।

३. नौलि प्रक्रिया द्वारा कुंडलनी जाग्रत बन सुष्मणा में ऊर्ध्वगामी बनती है।

४. अकाल वृद्धत्व टलता है।

५. मंदाग्नि, अजीर्ण, गेस, मलावरोध, स्वप्नदोष, धातुक्षय इत्यादी दूर होता है।

नाडी

शरीर में रक्त प्रवाह के लिए जिस प्रकार स्थूल शरीर में नाड़ीयाँ फैली हुई है उसी प्रकार सूक्ष्म शरीर के भीतर भी प्राण शक्तियाँ अथवा जीवनी शक्ति के संचार के लिए जाले की भाँती फैली सूक्ष्म नाडीयाँ फैली हुई है। स्थूल शरीर की नाडीयाँ अथवा रक्त वाहिनीयों की भाँती सूक्ष्म शरीर की नाडीयाँ हम स्थूल दृष्टी से देख नहीं पाते। किंतु आध्यात्मिक विकास कर उच्चतम क्षमतावान योग साधक उसे देख सकता है।

योग शास्त्रो में नाडीयोंकी संख्या का उल्लेख ७२,००० नाड़ीयों के रुप में मिलता है। जब की शिव संहितामें सब से अधिक ३,५०,००० नाडीयों का उल्लेख मिलता है।

शिव संहिता के द्वितीय पटल के तेरहवे श्लोक में कहा गया है की...

सार्धलक्ष्यत्रयं नाड्यः सन्ति देहान्तरे नृणाम्
प्रधानभूता नाडयुस्तु तासु मुख्या श्चतुर्दशः ।।

मनुष्य के शरीर में साढ़े तीन लाख नाड़ीयाँ प्रधान है और उस में चौदह नाड़ीयाँ मुख्य है। अब चौदह नाडीयों का विवरण करते हुए आगे कहा है

सुषुम्णेडा पिंगला च गान्धारी हस्तिजिह्वका
कूहुः सरस्वती पूषा शंखिनी च पयश्विनी ।।
वारुणालम्बुषा चैव विश्वोदरी यशस्विनी
एतासु तिस्त्रो मुख्यास्युः पिंगलेडा सुषुम्णिका ।।

सुषुम्णा, इडा, पिंगला, गांधारी, हस्ति, जिह्वा, कूहु, सरस्वति, पूषा, शंखिनी, पयस्विनी, वारुणा, अलम्बूषा, विश्वोदरी, यशस्विनी यह चौदह नाड़ीयाँ प्रमुख है। जिस में इडा, पिंगला और सुषुम्णा तीन नाडीयाँ मुख्य है।

योग शास्त्र में यह तीन नाडीयाँ मुख्य बतायी गई है जिस में सुषुम्णा नाडी का स्थान सर्वोच्च बताया गया है।

सुषुम्णा

शिव संहिता में सुषुम्णा नाडी का महत्व दर्शाते हुए कहा है की

तिसृष्वेका सुषुम्णैव मुख्या सा योगी वल्लभा ।
अन्या स्तदाश्रयं कृत्वा नाड्याः सन्ति हि देहिनाम् ।।

तीनो में भी सुषुम्णा नाड़ी साक्षात् योग वल्लभा कहलाती है। अन्य सभी नाडीयाँ उसीका आश्रय कर शरीर में रहती है। सुषुम्णा नाड़ी योग और मोक्ष साधना में अत्यंत लाभदायी है। योग शास्त्र में उसे ब्रह्मनाडी कहा जाता है।

प्रत्याहार

स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्य स्वरुपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः।

"बहिर्मुखी इन्द्रियों को अंतरमुखी करना।" हमारी इच्छा, कामना, संकल्प से विचारों में भटकते मन को शांत कर बहिर्मुखी वृत्तिओं को अंतरमुखी बनाना।

प्रत्याहार यानी बहिर्मुखी इन्द्रियों, वृत्तियों को प्रत्यावर्तन से अंतरंग में जोड़ना। यानी बहिर्मुखी मन को अंतरमुखी बनाना। प्रत्याहार से अंतरमुखी बना हुआ मन एक लक्ष्य में धारणा के पात्र बनता है। प्रत्याहार सिद्ध किया हुआ साधक सरलता पूर्वक अपने ध्येय या इष्टदेव में अपने मन को केन्द्रित कर सकता है। मन को धारणा में बांध सके जिसके द्वारा इन्द्रियजीत बनकर अनेक सिद्धिया, अतिन्द्रिय शक्तियाँ प्राप्त करता है। इन्द्रियों में भटकता मन स्वप्नावस्था के सुख, दुःख, माया में भटकाता है, परंतु स्वप्नावस्था से जाग्रत होने के पश्चात् स्वप्नावस्था के सुख, दुःख, माया की याद रहती है परंतु दुःख, व्यथा नहीं, इस प्रकार प्रत्याहार के बाद इन्द्रिय भोग, मोह, आसक्ति नष्ट होते है और मन सरलता से इष्टदेव के योग धारणा में जुड़ कर ध्यान समाधि द्वारा ईश्वरीय चेतना के साथ क्रमशः ईश्वरत्त्व से एकत्व का लाभ प्राप्त करता है।

धारणा

देश बन्धश्चित्तस्यधारणा।

"चित्त को किसी निश्चित आकार या ध्येय में केन्द्रित करने का प्रयास करना।" धारणा कोई निश्चित ध्येय, गुण, उद्देश्य, रूप, उर्जा, दैवीशक्ति की तरफ चित्त की अभिमुखता है।

धारणा योग के अंतरंग का प्रवेश द्वार है। धारणा में चित्त को ध्येय पर संपूर्ण केन्द्रित के दिया जाता है।

धारणा किसी निश्चित ध्येय, गुण, उद्देश्य, रूप उर्जा, दैवी शक्ति की तरफ चित्त की अभिमुखता है। धारणा के सतत अभ्यास से मन, वृत्तियाँ क्रमशः ध्येय या इष्टदेवमय बन जाते है। धारणा के अभ्यास से साधक ध्येय या इष्टदेव के गुण, स्वभाव को धारण करता है। धारणा की परिपक्वता अनेक सिद्धियाँ प्रदान करती है। उत्तम धारणा ध्यान में परिणीत होती है। धारणा की फलश्रुति ध्यान है। धारणा उच्चावस्था में ध्यान बन जाती है और ध्यान ही उच्चावस्था में समाधि बन जाता है।

ध्यान

तत्र प्रत्यैकतानता ध्यानम्।

"चित्त का किसी निश्चित आकार या ध्येय में केन्द्रित होना।"

निश्चित ध्येय या इष्टदेव की धारणा का अभ्यास परिपक्व होने पर मन संपूर्ण शांत हो कर ध्येय या इष्टदेव में एकाकार बनता है। मन का ध्येय या इष्टदेव में धारणा में अविचल एकाकार तादात्म्य को ध्यान कहते है। ध्यान से ध्येय के गुण, स्वभाव, सिद्धि साधक में प्रकटते है। ध्यान से साधक अनेक सिद्धियाँ और ज्ञान विज्ञान का स्वानुभव युक्त ज्ञाता बनता है। ध्यान में ध्येय के साथ ही ध्यान और ध्यान क्रिया के प्रति भी कम या ज्यादा अंश में साधक सभान होता है।

समाधि

स्वरुपशून्यमिव समाधिः।

"ध्यान में केन्द्रित हो कर हम स्वयं को और ध्यान क्रिया का विस्मरण कर देते है तथा ध्येय में लीन बन जाता है।

ध्यान में ध्येय के प्रति एकाकार, अविचल, तादात्म्य हुए मन से स्वयं को यानी ध्याता और ध्यान क्रिया का विस्मरण हो जाता है मन केवल ध्येयाकार बन जाता है, उसे समाधि कहते है। उत्तम समाधि वह है कि जिस में मन स्व स्वरूप में विलिन हो जाए, स्वरूप के प्रति स्वभानता शून्य हो जाती है। इस प्रकार समाधि निष्ठ साधक ब्रह्मांडिय ज्ञान, विज्ञान को समाधि स्थिति में जान सकते है। लोक लोकांतर का स्वयं अनुभव प्राप्त कर सकते है, भूतकाल, वर्तमान और ज्यादातर भविष्य को जान लेते है अंत में ईश्वरीय शक्ति के साथ तादात्म्य साध कर स्वयं को माया के बंधनों से मुक्त कर ससीम से असीम, शिवरुप बन जाता है। जिसे मोक्ष या परमपद की प्राप्ति कहते है।

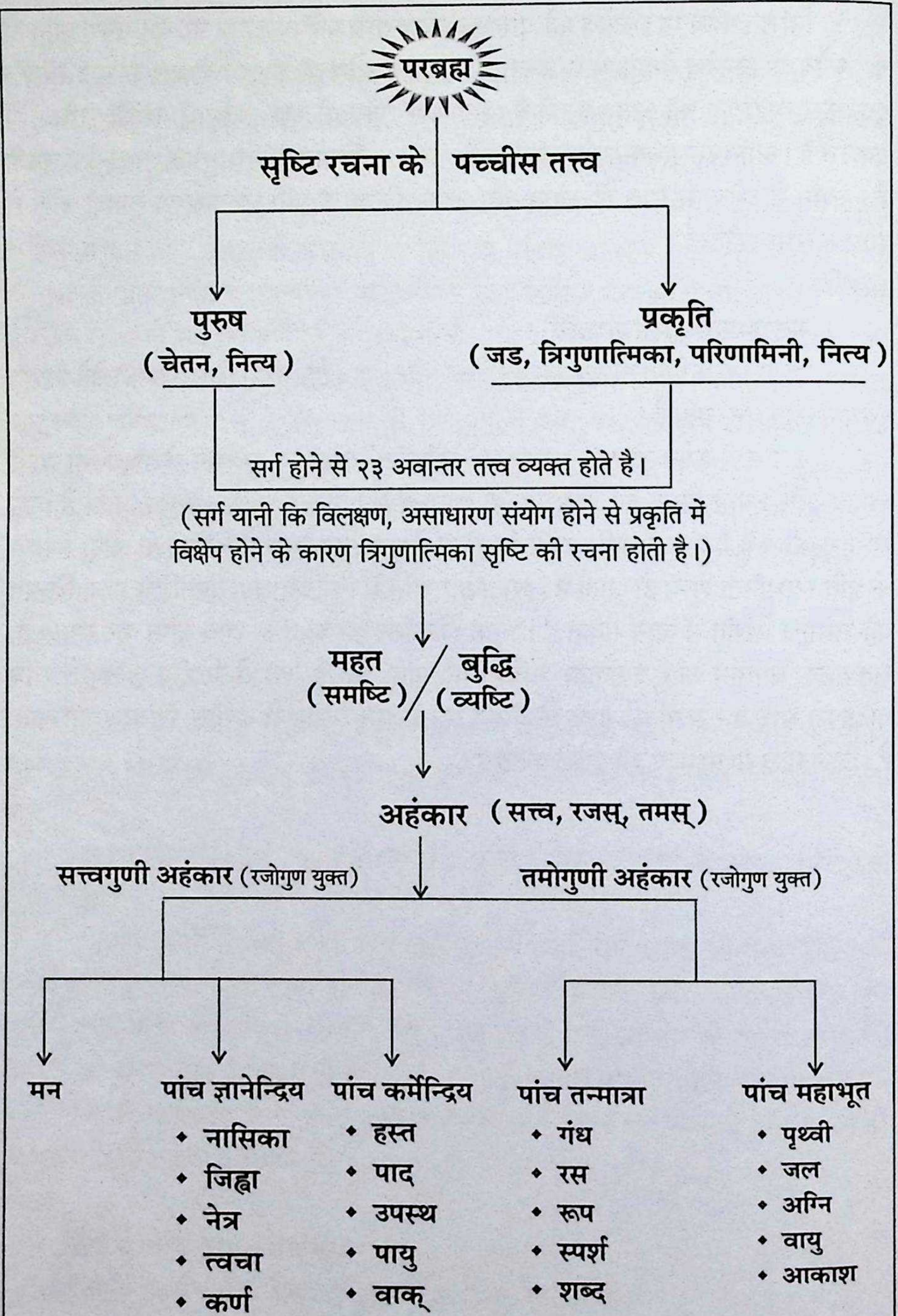
परब्रह्म
सृष्टि रचना के पच्चीस तत्त्व
पुरुष
(चेतन, नित्य)
प्रकृति
(जड, त्रिगुणात्मिका, परिणामिनी, नित्य)
सर्ग होने से २३ अवान्तर तत्त्व व्यक्त होते है।
(सर्ग यानी कि विलक्षण, असाधारण संयोग होने से प्रकृति में विक्षेप होने के कारण त्रिगुणात्मिका सृष्टि की रचना होती है।)
महत
(समष्टि)
बुद्धि
(व्यष्टि)
अहंकार (सत्त्व, रजस्, तमस्)
सत्त्वगुणी अहंकार (रजोगुण युक्त)
तमोगुणी अहंकार (रजोगुण युक्त)
मन
पांच ज्ञानेन्द्रिय
• नासिका
• जिह्वा
• नेत्र
• त्वचा
• कर्ण
पांच कर्मेन्द्रिय
• हस्त
• पाद
• उपस्थ
• पायु
• वाक्
पांच तन्मात्रा
• गंध
• रस
• रूप
• स्पर्श
• शब्द
पांच महाभूत
• पृथ्वी
• जल
• अग्नि
• वायु
• आकाश

वेदांग

- शिक्षा → • याज्ञवल्क्य शिक्षा • पाणिनीयशिक्षा
- कल्प → • श्रौतसूत्र • गृह्यसूत्र • कर्मसूत्र • शुल्वसूत्र
- व्याकरण → • ऋक्प्रातिशाख्य • सामप्रातिशाख्य • शुक्लयजुःप्रातिशाख्य
- निरुक्त → • निघण्टु
- ज्योतिष → • होराशास्त्र • भृगुसंहिता • नारदसंहिता
- छन्द → • पिंगलसूत्र

वेद

वेद विभाजन

ऋग्वेद
(21 शाखा)
पैल ऋषि

- संहिता → १. ऋग्वेद संहिता
- ब्राह्मण → १. ऐतरेय ब्राह्मण, २. कौषितकि ब्राह्मण
- आरण्यक → १. ऐतरेय आरण्यक, २. कौषितकि आरण्यक
- उपनिषद् → १. ऐतरेयोपनिषद, २. कौषितकि ब्राह्मणोपनिषद
- उपवेद → १. आयुर्वेद

यजुर्वेद
(100 शाखा)
वैशम्पायन ऋषि

- संहिता → १. यजुर्वेद संहिता
- ब्राह्मण → १. शतपथ, २. मैत्रायणी, ३. कपिष्ठल, ४. तैत्तिरीय, ५. कठ
- आरण्यक → १. बृहदआरण्यक, २. मैत्रायणी, ३. तैतिरीय
- उपनिषद् → १. ईशावास्योपनिषद, २. कठोपनिषद, ३. तैतिरीयोपनिषद, ४. श्वेताश्वतरोपनिषद, ५. बृहदारण्यकोपनिषद
- उपवेद → १. धनुर्वेद

सामवेद
(1000 शाखा)
जैमिनी ऋषि

- संहिता → १. सामवेद संहिता
- ब्राह्मण → १. तांड्य, २. षडविंश, ३. आर्षेय, ४. छांदोग्य, ५. जैमिनीय
- आरण्यक → १. तावलकर, २. छांदोग्य
- उपनिषद् → १. केनोपनिषद, २. छांदोग्योपनिषद, ३. मैत्रायण्युपनिषद
- उपवेद → १. गन्धर्ववेद

अथर्ववेद
(9 शाखा)
सुमन्तु ऋषि

- संहिता → १. अथर्ववेद संहिता
- ब्राह्मण → १. गोपथ ब्राह्मण
- आरण्यक
- उपनिषद् → १. प्रश्नोपनिषद, २. मुण्डकोपनिषद, ३. माण्डुकोपनिषद
- उपवेद → १. शिल्पवेद (स्थापत्यवेद)

पुराण
(18 पुराण)
रोमहर्षण ऋषि

१. ब्रह्मपुराण
२. पद्मपुराण
३. विष्णुपुराण
४. शिवपुराण
५. भागवतपुराण
६. नारदपुराण
७. मार्कण्डेयपुराण
८. अग्निपुराण
९. भविष्यपुराण
१०. ब्रह्मवैवर्तपुराण
११. लिंगपुराण
१२. वराहपुराण
१३. स्कन्दपुराण
१४. वामनपुराण
१५. कूर्मपुराण
१६. मत्स्यपुराण
१७. गरूडपुराण
१८. ब्रह्मांडपुराण
(18 उपपुराण)

षड्दर्शन

- सांख्य → कपिल
- योग → पतंजलि
- न्याय → गौतम
- वैशेषिक → कणाद
- मीमांसा → जैमिनी
- वेदान्त → बादरायण

पंचउपदेश

(१) सनातन धर्म -

"सनातन धर्म अपौरुषेय है, अपौरुषेय अर्थात् जो किसी व्यक्ति द्वारा स्थापित ना हो।" सनातन धर्म ऐसे आदर्श, सिद्धांत, मूल्यों का समुच्चय है जो जीवसृष्टि का कल्याण करते है, प्रकृति की रक्षा करें और किसी का अहित ना करें, जो सदैव और सर्वत्र कल्याणकारी हो।

सनातन :- जो सृष्टि की शुरुआत से अंत तक टीके रहने में सक्षम हो, जिस का आदि या अंत नहीं वह सनातन।

संस्कृति :- संस्कृति यानी संस्कृत, सभ्य, श्रेष्ठ बनानेवाली सर्व कल्याणकारी जीवन पद्धति।

सनातन संस्कृति:- सनातन संस्कृति यानी जिस में मानव, पशु, पक्षी, वनस्पति, जीवमात्र का कल्याण और प्रकृति की रक्षा के श्रेष्ठ मूल्यों, आदर्शो, सिद्धांतों समाहित हो, जो जीवसृष्टि की शुरुआत से हो एवं अंत तक टीके रहने में सक्षम हो ऐसी जीवन पद्धति।

सनातन संस्कृति के आधारभूत मुल्यों और जीवन पद्धति :-

"सनातन संस्कृति" अनुसार जीवन अर्थात् नैतिकता, सात्विकता और आध्यात्मिकता का उत्तम समन्वय युक्त सर्व कल्याणकारी जीवन, जिससे शांति, नीति, एकता स्थापित हो और सभी का वर्तमान जन्म में और भविष्य के जन्मो में भी कल्याण हो।

नैतिकता :-

नैतिकता यानी धर्म नीति से जिना, धर्मनीति से अपने अधिकार में हो उससे संतोष मानना, अनीति, अधर्म, छल प्रपंच, लोभवृत्ति का त्याग करना। जो अपने अधिकार का नहीं है उसे छीनना या छल से प्राप्त करने का प्रयत्न ना करना या स्वीकार ना करना।

हम ऐसा जीवन जिए कि जो धर्मनीति अनुसार पक्षपात रहित न्यायोचित और सर्व कल्याणकारी हो। जब हम में सद्‌गुण प्रभावी हो तब हम वाणी, व्यवहार से सत्कर्म करते है और जब हम में दुर्गुण प्रभावी बनते है तब हम वाणी, व्यवहार से दुष्कर्म करते है। हम हमारे प्रत्येक दुर्गुण को पहचानकर स्वयं दुर्गुण मुक्त और सद्‌गुणी, सदाचारी बनें। दुर्जन, दुराचारी, दुर्गुणी व्यक्ति भी दृढ़ संकल्प, प्रभु प्रार्थना, उत्तम पुरुषार्थ, सज्जनों की संगति, शास्त्र अभ्यास, सत्संग, भजन को विवेक सहित जीवन में अपनाए तो सद्‌गुणी, सदाचारी और दुर्गुणों से मुक्त बन सकते है। प्रामाणिकता, कर्तव्य परायणता, लोभ-लालच का त्याग, अपरीग्रह, न्यायकारीता, मानवता, क्षमाभाव, त्यागभाव, परोपकार इत्यादी गुण नैतिकता का पालन करते हुए प्रकट होते है। नैतिकता धारण करनेवाले छल प्रपंच, कपट या चोरी नहीं कर सकते।

सात्विकता :-

तामसिक व्यक्ति परपीडक और स्वयं के लिए हानिकर कर्म करते है। रजोगुणी व्यक्ति "मैं"के अहंकार से प्रभावित होते है, उसके अहंकार का पोषण करने हेतु वह कठीन पुरुषार्थ या त्याग करता है और अहंकार का पोषण नहीं होता तो कार्य या व्यवहार से दूरी बनाते है या नफरत या द्वेष या शत्रुता करता है। सात्विक व्यक्ति सरल, अहंकार विहिन, निरुपद्रवी, पवित्र, तपस्वि, सेवाभावी, क्षमाशील भक्तिमय जीवन जीते स्व कल्याण के साथ सर्व कल्याण करते है।

सात्विक व्यक्ति मन, वचन, कर्म से पवित्र कल्याणकारी कर्मो करता है। उसका खानपान, रहन-सहन, वाणी-व्यवहार पवित्र कल्याणकारी होते है। उनके कार्यो में परमार्थ, ईश्वर उपासना, सेवाभाव, दया, करुणा, क्षमा सहज व्यक्त होते है। अज्ञानजनीत अहंकार, अकड़-पकड़, राग-द्वेष, छल-प्रपंच और कटु कटाक्ष, कठोर वाणी उनमें लेशमात्र भी नहीं होते। वह निरुपद्रवी होते है। सात्विक मनुष्य का जीवन सात्विकता से प्रकाशित परदु:ख भंजन, पवित्र, मोहमाया और अहंकार रहित, भक्तिभाव युक्त धर्ममय होता है। **"वैष्णव जन तो उसे ही कहीये जो पीर पराई जाणे रे, परदु:खे उपकार करे तोय मन अभिमान ना लाए रे !**

आध्यात्मिकता :-

आध्यात्म के बारे में भगवद् गीता में भगवान कहते है **"स्वाभावोऽध्यात्म उच्यते"** (भ.गी.८.३) स्वभाव ही अध्यात्म है। स्वभाव यानि स्व + भाव। आत्मा का स्वभाव कौन सा ? सत्‌चित्‌आनंद, **"पूर्णमदः पूर्णमिदम्"** आत्मा का स्वभाव पूर्णता है सीमितता नहीं। आत्मा को स्वयंसिद्ध ज्ञान है अनुमानित जानकारी नहीं। आत्मा संपूर्ण ऐश्वर्ययुक्त है, उस में दीनता, लाचारी नहीं। आत्मा आनंदयुक्त है उस में सुख दु:ख नहीं। आत्मा अद्वैत है उस में द्वैत भाव नहीं। दिर्घकाल योगाभ्यास और वैराग्य के द्वारा आध्यात्मिकता में उत्तरोत्तर प्रगति करते हुए किसी जन्म में जिवात्मा सीमित जीवभाव का त्याग कर आत्मा स्वयं प्रकाशित, ज्ञानयुक्त, असीम, आनंदमय, पूर्णता की स्थिति को प्राप्त होता है।

विभिन्न शास्त्र अनुसार धर्म के लक्षण

मनुस्मृति में धर्म के दस लक्षणों का वर्णन किया है।

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥

धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, धी, विद्या, सत्य और अक्रोध धर्म के दस लक्षण कहे गये है।

याज्ञवल्क्य ने धर्म के नव लक्षणों को बताया है।

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
दानं दमो दया शान्तिः सर्वेषां धर्मसाधनम् ॥

अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), शौच, इन्द्रियनिग्रह, दान, दम (संयम), दया और शांति यह नौ धर्म के लक्षण है।

महात्मा विदुरजी ने धर्म के आठ लक्षण कहे है

इज्या (यज्ञ याग, पूजा आदि), अध्ययन, दान, तप, सत्य, दया, क्षमा और अलोभ

पद्मपुराण में धर्म के दस लक्षण इस प्रकार है।

ब्रह्मचर्य, सत्य, तप, दान, संयम, क्षमा, शौच, अहिंसा, शांति और अस्तेय को धर्म के लक्षण कहे है।

श्रीमद्भागवत महापुराण के सप्तम स्कन्ध में धर्म के तीस लक्षण बतलाये गये है।

सत्यंदया तपः शौचं तितिक्षेक्षा शमो दमः।
अहिंसा ब्रह्मचर्यं च त्यागः स्वाध्याय आर्जवम् ॥
संतोषः समदृक् सेवा ग्राम्येहोपरमः शनैः।
नृणां विपर्ययेहेक्षा मौनमात्मविमर्शनम् ॥
अन्नद्यादे संविभागो भूतेभ्यश्च यथार्हतः।
तेषात्मदेवताबुद्धिः सुतरां नृषु पाण्डव ॥
श्रवणं कीर्तनं चास्य स्मरणं महतां गतेः।
सेवेज्यावनतिर्दास्यं सख्यमात्मसमर्पणम् ॥
नृणामयं परो धर्मः सर्वेषां समुदायहृतः।
त्रिशल्लक्षणवान् राजन्सर्वातम येन तुष्यति ॥

सत्य, दया, तपस्या, शौच, तितिक्षा, उचित अनुचित का विचार, मन का संयम, इन्द्रियों का संयम, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, त्याग, स्वाध्याय, सरलता, सन्तोष, समदर्शी महात्माओं की सेवा, धीरेधीरे सांसारीक भोगों की चेष्टा से निवृत्ति, अभिमानपूर्ण प्रयत्नों का फल अहितकारी होते है ऐसा निश्चय, मौन आत्मचिन्तन, प्राणियों को अन्न आदि का यथायोग्य विभाजन, उनमें और विशेष करके मनुष्यों में अपने आत्मा तथा इष्टदेव का भाव, संतों के परम आश्रय भगवान् के नाम गुण लीला आदि का श्रवण कीर्तन, स्मरण, उनकी सेवा, पूजा और नमस्कार, उनके प्रति दास्य, सख्य और आत्म समर्पण यह तीस प्रकार के आचरण सभी मनुष्यों का परम धर्म है।

(२) कर्म का सिद्धांत -

हमारे ऋषिमुनियोंने हमारे कर्म के बारे में समझाते हुए कर्म को तीन हिस्से में बाँटा। संचित कर्म, प्रारब्ध कर्म और क्रियमाण कर्म।

संचित कर्म -

हमारे द्वारा किये जाते प्रत्येक कर्म संचित कर्म में जमा होते है, फिर भले ही वह कर्म कल्याणकारी या अहितकारी हो, राग से या नफरत से किया हुआ कर्म हो, वह प्रत्येक कर्म संचित कर्म में जमा होते है। (संचय यानी एकत्र, इकठ्ठा, एकत्रित करना)

प्रारब्ध कर्म -

अपने जिवात्मा के संचित कर्मो में से कुछ पूर्वकृत कर्मके कर्मफल कि जो इस जन्म में अथवा आगे के समय में हमे भुगतना निश्चित हुआ हो उसे प्रारब्ध कर्म कहते है। पूर्वजन्म में किए हुए कुछ कर्म के फल हमे वर्तमान जन्म में प्रारब्ध रुप में मिलते है और वर्तमान जन्म में जो कर्म करते है उसमें से कुछ कर्म के फल वर्तमान जन्म में प्रारब्ध रुप मिलते है।

क्रियमाण कर्म -

प्रारब्ध कर्म जब फल देने को क्रियान्वित होता है तब उसे क्रियमाण कर्म कहा जाता है। क्रियमाण कर्म हमारे वर्तमान के सुख दुःख, अनुकूलता प्रतिकुलता के रूप में हम भूगतते है।

(३) कर्म ज्ञान भक्ति -

हमारे ऋषि मुनियों ने आत्मकल्याण के लिए कर्म, ज्ञान, भक्ति की त्रिवेणी दर्शायी है

कर्म -

संसार में प्रत्येक मनुष्य के लिए एक मात्र कर्म है की स्वयं को ईश्वरमय बनाना।

कर्म ज्ञान भक्ति अंतर्गत प्रथम है कर्म। कर्म दो प्रकार के है। एक व्यवहारीक कर्म या अर्थ काम पुरुषार्थ कर्म और दुसरा है धर्म मोक्ष पुरुषार्थ कर्म।

ऐसे कर्म दो प्रकार के है **(१) सकाम कर्म (२) निष्काम कर्म**

(१) सकाम कर्म -

धर्म एवं मोक्ष पुरुषार्थ अंतर्गत जो कर्म निश्चित फल प्राप्ति के उद्देश्य से किये जाये वह सकाम कर्म है। सकाम कर्म के अंतर्गत निश्चित उद्देश्य या सिद्धि प्राप्ति हेतु मंत्रजप, यज्ञ, तप, योग साधना की जाती है।

(२) निष्काम कर्म -

धर्म एवं मोक्ष पुरुषार्थ अंतर्गत जो कर्म प्रभुप्रेम या ईश्वर शरणागति या सर्व कल्याण हेतु (सिमित उद्देश्य सिवा) किये जाये वह निष्काम कर्म है। निष्काम कर्म के अंतर्गत प्रभुप्रेम या ईश्वर शरणागति या सर्व कल्याण हेतु (सिमित उद्देश्य सिवा) मंत्रजप, यज्ञ, तप, योग साधना की जाती है।

कर्म ज्ञान भक्ति अंतर्गत कर्म करने को साधना कहा है। कर्म साधना द्वारा साधक ज्ञान को उपलब्ध होता है। जिस ज्ञान की उच्चतम स्थिति में उसे बोध होता है कि परमात्मा ही सर्वेश्वर है, सर्वाधार है मैं मेरा सब मिथ्या है इसका स्वीकार कर वह माया के सभी बंधन, मोह को त्याग कर ईश्वर को संपूर्ण समर्पित हो जाता है, तब उसका भक्ति में प्रवेश होता है।

ज्ञान -

हमारे शास्त्र में दो प्रकार का ज्ञान बताया है। परोक्ष ज्ञान और अपरोक्ष ज्ञान। परोक्ष ज्ञान शास्त्रो का अध्ययन करके, चिंतन मनन से, सत्संग से,अनुमान से प्राप्त कर सकते है। अपरोक्ष ज्ञान स्वानुभूति से प्राप्त किया जाता है। कर्म ज्ञान, भक्ति अंतर्गत जो ज्ञान के बारे में समझाया गया है वह जो ज्ञान है वह हमें ईश्वर की सर्व व्यापकता का बोध करवाता है, जो हमे संसार के मिथ्यात्व का बोध करवाता है। उसके परीणाम स्वरुप सहज वैराग्य और ईश्वर शरणागति प्रकट होती है, जिससे साधक सहजता से भक्ति में स्थित होते है। ज्ञान से सहज समता, स्थित प्रज्ञता प्रकट होती है। "सा विद्या या विमुक्तये" वह ज्ञान भक्ति और भक्ति मुक्ति तरफ ले जाती है।

भक्ति -

किसी भी व्यक्ति को अपने जिवात्मा के कल्याण हेतु कर्म, ज्ञान और भक्ति की त्रिवेणीको उत्तम प्रकार से धारण करना ही पड़ेगा। कर्म की परिपक्वता से ज्ञान प्रकट होता है और ज्ञान की परिपक्वता से भक्ति प्रकट होती है, जो मुक्ति का साधन बनती है।

भक्ति के आचार्य नारद मुनि कहते है कि; "ईश्वर के प्रति परम प्रेम अर्थात् भक्ति।" कर्म से, ज्ञान से और योग से भक्ति श्रेष्ठ है। क्योंकी कर्म, योग, ज्ञान की पूर्ण अवस्था में भक्ति परिपक्व बनती है। भक्ति की परिपक्वता में व्यक्ति सर्व प्रकार की कामनाओं से मुक्त होकर ईश्वर को समर्पित (शरणागत) और जीवमात्र के लिए कल्याणकारी बनता है। "भक्ति यानी "ईश्वर को संपूर्ण समर्पण" भक्ति से भक्त ईश्वरमय बन जाता है, परिणाम स्वरूप मुक्ति फल को प्राप्त होते है।

(४) चार आश्रम -

हमारी संस्कृति चार आश्रमों की शिक्षा जीवन पद्धति, मार्गदर्शन देती है। ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम और संन्यासाश्रम।

ब्रह्मचार्याश्रम -

सनातन धर्म में आयु के प्रथम पच्चीस वर्ष ब्रह्मचर्याश्रम का पालन करने के लिये समझाया है। ब्रह्म यानी परमतत्त्व (परमात्मा) चर्या यानी जीना या आचरण करना। ब्रह्ममय बनने हेतु जीना या कर्म करना ब्रह्मचर्याश्रम है।

बालक उपनयन संस्कार के बाद गुरू के आश्रम में जाकर विद्या प्राप्ति हेतु स्वयं को गुरु को समर्पित करता है। गुरु बालक को भाषा एवं व्याकरण सिखाकर वेद, उपनिषद शास्त्रों का ज्ञान देकर उसे ब्रह्ममय बनने शिक्षा दीक्षा देते है।

उषाकाल में उठकर शौच स्नान से निवृत्त हो कर ब्रह्ममुहुर्त से ब्रह्मचारी की तपः साधना शुरू होती है और ध्यान, देवपूजन, संध्या, यज्ञ, स्वाध्याय, गुरुसेवा, जीवमात्र की सेवा करते हुए रात्रि के प्रथम प्रहर तक तपोमय दिनचर्या के बाद शरीर मन को विश्राम हेतु आवश्यक शयन करने मिलता है। इस प्रकार तप करते हुए ब्रह्मविद्या की आराधना के साथ जो भविष्य में गृहस्थी बनना चाहे वह व्यवहार विद्या यानी अर्थोपार्जन विद्या भी सिखाता है। ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्याश्रम के बाद ब्रह्ममय बनने हेतु संन्यासी बनता है या भोग कामना पूर्ति हेतु ब्रह्मचर्याश्रम के बाद गृहस्थाश्रमी बनते है।

गृहस्थाश्रम -

जीवात्मा में जन्म जन्मातरों के जो कामनाये होती है उसे धर्मानुसार भुगतकर मुक्त होने हेतु ब्रह्मचर्याश्रम के बाद गृहस्थाश्रम व्यवस्था है। गृहस्थाश्रम युवावस्था के सीमित समय के लिये होता है, जिवन भर के लिये नहीं।

व्यक्ति गृहस्थाश्रम में धर्मानुसार सांसारीक जीवन जीते अपनी भोगवृत्ति से मुक्त होकर धर्म और परमार्थ कर्म करते, जीवात्मा को माया आसक्ति से मुक्त कर त्यागवृत्ति स्वीकार कर वानप्रस्थाश्रमी बनते है। गृहस्थी को अपने ५० वर्ष पूर्ण होने के बाद या अपने पुत्र पुत्रीयों के विवाह के बाद गृहस्थ जीवन से मोह न करते हुए गृहस्थ का त्याग कर वानप्रस्थी बनना ही चाहिए।

वानप्रस्थाश्रम -

गृहस्थाश्रम में सुख, सुविधा, मान, सम्मान, राग, आसक्ति मैं-मेरा का जो संस्कार पडा था उससे मुक्त होकर सरलता, सादगी से जीवन जीते तन मन को तपाने सुखदुःख, अनुकूलता प्रतिकूलता मान अपमान से परे होकर सेवा, परमार्थ, स्वाध्याय यज्ञ और योग साधना करना वानप्रस्थी के कार्य है। वानप्रस्थाश्रम में पति पत्नी साथ रह सकते है किन्तु

गृहस्थ की जैसे भोग, अधिकार आग्रह का त्याग कर सेवा, परमार्थ, यज्ञ, साधना में सहयोगी के तौर पर एक दूसरे को साथ देते है। वानप्रस्थ जीवन जीते हुए राग द्वेष, अनुकूलता-प्रतिकूलता अहंकार, अकड़ पकड़, मान अपमान, इत्यादी रजो तमो गुण से मुक्त हो कर सात्त्विक, आसक्ति, मोह रहित, दंभ छलरहित, निरुपद्रवी, एकांतवासी, अकिंचन, जीवन जीने के संस्कार प्रबल बनते है तब संन्यासी बन कर ईश्वर शरणागति स्वीकार कर व्यक्ति अपना श्रेष्ठ कल्याण करते है।

मनुष्य को प्रौढ़ अवस्था या वृद्धावस्था में लाचारी या बीमारी को प्राप्त होकर स्वयं पीड़ित होते मृत्यु से शरीर छुटे उससे पहले उचित समय पर वानप्रस्थी बनना ही चाहिए।

संन्यासाश्रम -

संन्यासी ब्रह्ममय बनने एकलवासी जीवन जीते हुए स्वयं को संपूर्ण आसक्ति, ममता रहित, द्वैष रहित बनाकर ईश्वर को संपूर्ण समर्पित हो जाता है। संन्यासी ईश्वर शरणागति से जीवन जीते हुए मोक्ष पुरुषार्थ और निष्काम परमार्थ कार्य करते हुए ब्रह्ममय स्थिति में स्थित रहने अपने आपको सर्व प्रकार से साध लेता है। संन्यासी जीवन मानव जीवन की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि है, जिस मार्ग पर चलकर साधक ईश्वर अनुग्रह से मोक्ष को उपलब्ध हो सकते है।

(५) पुरुषार्थ चतुष्टय

सनातन संस्कृति हमें समझाती है कि हमें किस प्रकार जीना चाहिये! कौन सा कर्म करना चाहिये जिससे समस्त मानवजातिका, पशु-पक्षी, जीवमात्र का कल्याण हो। हमारे ऋषी मुनियों ने जीवन की सर्वोच्च सफलता हेतु चार पुरुषार्थ की आवश्यकता और उसके महत्व को समझाया। (१) धर्म (२) अर्थ (३) काम (४) मोक्ष

अर्थ पुरुषार्थ यानी जीवन निर्वाह के लिए व्यवस्था प्राप्त करना और काम पुरुषार्थ यानी कामना पूर्ति करना, वंश चलाना। अर्थ और काम पुरुषार्थ सभी प्राणीयों में देखने मिलता है, किंतु धर्म पुरुषार्थ और मोक्ष पुरुषार्थ मानवों में देखने मिलता है। धर्म पुरुषार्थ हमारी उन्नति करता है और मोक्ष पुरुषार्थ हमारे जीवात्मा को संसार बंधनों से मुक्त करता है।

आद्य गुरु शंकराचार्य जी का कथन है कि

दुर्लभं त्रयमेवैतत् देवानुग्रहहेतुकम्।
मनुष्यत्वं मुमुक्षुत्वं, महापुरुष संश्रयः॥

संसार में तीन बात दुर्लभ है मनुष्य का जन्म मिलना, यदि जन्म मील जाये तो मोक्ष की इच्छा होना, जो मोक्ष की इच्छा भी हो जाये तो किसी महा पुरुष का आश्रय मिलना दुर्लभ है।

(१) धर्म :-

"सनातन धर्म अपौरुषेय है, अपौरुषेय अर्थात् जो किसी व्यक्ति द्वारा स्थापित ना हो।" सनातन धर्म ऐसे आदर्श, सिद्धांत, मूल्यों का समुच्चय है जो जीवसृष्टि का कल्याण करे, प्रकृति की रक्षा करें और किसी का अहित ना करें, जो सदैव और सर्वत्र कल्याणकारी हो। जो सिद्धांत, मूल्यों को धारण करने से स्वयं का, जीव सृष्टि का, प्रकृति का कल्याण हो, किसी का अहित ना हो।

आहार निद्रा भय मैथुनं च सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम् ।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषः धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः ॥

आहार, निंद्रा, भय, मैथुन मनुष्यों और पशुओं के लिए स्वाभाविक रूप से समान है। मनुष्यों और पशुओं में धर्म और मोक्ष पुरुषार्थ की क्षमता का विशेष भेद है। जो मनुष्य धर्म पुरुषार्थ का पालन नहीं करता वह पशु के समान है।

भगवान ने मनुष्यों को स्वतंत्र सोच, धर्म नीति अनुसार सही गलत सोचने का निर्णय करनेवाली बुद्धि क्षमता दी है। इसलिए मनुष्य को मन चाहे कर्म ना करके, सोच समझ कर सात्त्विक कर्म करने चाहिए। सत्कर्मो का, धर्मकर्म का अनुशीलन करना चाहिए। धर्मकर्म का फल पुण्यलाभ, सुख और शांति की प्राप्ति है तथा अधर्म कर्म का फल पाप, दुःख और अशांति की प्राप्ति है।

धर्मकर्म समझाते हुए हमारे शास्त्रों में मनुष्य के कल्याण हेतु विहित कर्म और नित्यकर्म का प्रतिपादन किया है। विहित कर्म यानी मनुष्यों को धर्मनीति अनुसार करने योग्य कर्म, जैसे की स्वाध्याय, संध्याकर्म, देव पूजन, यज्ञ, मंत्रजप, व्रत, दान, सत्संग, सेवा, तप, परमार्थ, शास्त्र अभ्यास गुरु सेवा इत्यादी। निषिद्ध कर्म यानी ना करने जैसे कर्म, अधर्म अनीति, पापकर्म जिसका फल दुःख, अशांति होती है।

गौतम ऋषि ने कहा है – यतो अभ्युदयनिःश्रेयस सिद्धिः स धर्म

जिस काम को करने से इस लोक में और परलोक में अभ्युदय और निःश्रेयस की सिद्धि प्राप्त हो वही ही धर्म है।

मनुस्मृति में धर्म के दस लक्षणों का वर्णन किया है।

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥

धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, धी, विद्या, सत्य और अक्रोध धर्म के दस लक्षण कहे गये है।

(२) अर्थः-

मनुष्य जीवन की प्राथमिक आवश्यकता है जीवन यापन और रक्षण करना। यदि

जीवन यापन और रक्षण की व्यवस्था ना हो पाये तो जीवन दुःखमय बन जाए। जीवन यापन और रक्षण के लिये जरुरी आवश्यकताएँ भोजन, वस्त्र, निवास, औषध इत्यादि के लिए जो पुरुषार्थ किया जाता है उसे ही अर्थ पुरुषार्थ कहते है।

कुछ मनुष्य आवश्यकताओं से अधिक सुख साधनों की प्राप्ति हेतु अधिक से अधिक पुरुषार्थ करता है, अत्यधिक सुविधा प्राप्ति हेतु कभी अनीति, अधर्म भी अपना लेते है जिसके परिणाम स्वरुप ना चाहते हुए भी असंतोष, ईर्षा, लोभ, लालच, मुश्किलों के दलदल में धसता चला जाता है।

विवेकी मनुष्य को धर्मनीति से प्राप्त धन, संपत्ति, सुविधा एवं कम से कम आवश्यकताओं के साथ जीवन जीते हुए संतुष्टी अनुभूत करनी चाहिए। संतोष के साथ सुख, शांति की प्राप्ति होती है। जब की असंतोष दुःख और अशांति का जनक है।

भर्तृहरि के नीति वाक्य अनुसार धन की तीन गति है

भोगो माशस्तिस्त्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य।
यो न ददाति न भुङ्क्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति।।

धन की यह तीन गति होती है – दान, भोग तथा नाश। लेकिन जो धन का ना दान देता है और ना ही उस का भोग करता है, उसके धन की तीसरी गति नाश होना निश्चित है।

पंचतंत्र में कहा है

दातव्यं भोक्तव्यं धनविषये सञ्चयो न कर्तव्यः।
पश्येह मधुकारिणां सञ्चितमर्थं हरन्त्यन्ये।।

धन दूसरों को दिया जाना चाहिए, अथवा उसका स्वयं भोग करना चाहिए। किंतु उसका संचय नहीं करना चाहिए। ध्यान से देखों कि मधुमक्खियों के द्वारा संचित धन अर्थात् शहद दूसरे हर ले जाते है।

श्रीमद् भागवत के अनुसार

अर्थस्य साधने सिद्ध उत्कर्षे रक्षणे व्यये।
नाशोपभोग आयासस्त्रासश्चिंता भ्रमो नृणाम्।।
स्तेयं हिंसानृतं दंभः कामः क्रोधः स्मयो मदः।
भेदो वैरमविश्वासः संस्पर्धा व्यसनानि च।।
एते पंचदशानर्था ह्यर्थमूला मता नृणाम्।
तस्मादनर्थमर्थाख्यं श्रेयोऽर्थी दुरतस्तयजेत्।।

अर्थ कमाने के लिए, कमाई बढ़ाने के लिए, उसके रक्षण, खर्च में, नाश, भोग में मनुष्य को परिश्रम, भय, चिंता करनी पडती है। अर्थ के कारण ज्यादातर मनुष्य में चोरी, हिंसा, जूठ, काम, क्रोध, अहंकार, छल कपट, बैर, अविश्वास, स्पर्धा, जुआँ, व्यसनादि पंद्रह प्रकार के

अनर्थ प्रकटतें है। अपना कल्याण चाहनेवाले को अनर्थो का त्याग करना चाहिए।

हमारे ऋषि मुनियों ने सदैव ही हमें सादा जीवन और उच्च विचारयुक्त जीवन शैली का आचारण करने हेतु उपदेश दिया है। उसी में मानव जीवन का कल्याण छीपा हुआ है। सादा जीवन और संतोष के बिना सदाचार को धारण करना कठिन है।

मनुष्य जीवन को टीकाए रखने के लिए बहुत स्वल्प सुविधाओं की आवश्यकता होती है। सच्चा सुख भगवद् भजन, ईश्वर शरणागति में है। ईश्वर की भक्ति, शरणागति ही कल्याण कारी है, उसके सिवा सब धन, मकान, सत्ता, सम्मान, परिवार और सब छोड़कर मृत्यु होने पर जाना पडेगा इसलिए इसकी प्राप्ति के लिये अधर्म अनीति ना करते हुए धर्मनीति का पालन करना और दान, त्याग, परमार्थ, यज्ञ करते हुए अर्थ का सही उपयोग करना वही ही कल्याणकारी है।

भगवान शिव स्वयं देवी उमा से कहा कहते है –

उमा कहऊँ मैं अनुभव अपना,
सत हरि भजन जगत सब सपना॥

(3) काम –

कमनं कामः वा काम्यते यः स कामः।

कामना अर्थात् काम या इन्द्रियो के विषयों के उपभोग की ईच्छा करना वह काम है। कामना पूर्ति के लिए कर्म करना जिसे काम पुरुषार्थ कहते है। कामना शब्द दो अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। **(१) शारिरीक कामना (२) सांसारीक कामना।**

काम पुरुषार्थ के द्वारा गृहस्थी अपने वंश को आगे बढ़ाता है तथा काम पुरुषार्थ के द्वारा ही मनुष्य अपनी इच्छाएँ, कामनाओ की पूर्ति करता है, परन्तु

शास्त्रकारों ने यह भी कहा है

वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता

जिसकी इन्द्रियाँ वश में है उसकी ही बुद्धि सात्त्विक और स्थिर रहती है। कामना की निवृत्ति कभी नहीं हो सकती, मृगजल के छलावा की तरहाँ वह सदैव मनुष्य को लुभाती रहेती है।

शास्त्र में कहा है –

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।

कामोपभोग से कामना का शमन नहीं होता, जिस प्रकार अग्निकुंड में घी की आहुति देने से ज्वाला भभक ऊठती है उसी प्रकार कामना की पूर्ति करने से वह अधिक प्रबलता के साथ जागृत होती है।

अज्ञानी मनुष्य समझता है कि वह भोगो को भुगतता है परन्तु वास्तविकता इससे विपरीत है, इसलिए संसार की असारता और वैराग्य के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए

भर्तृहरि ने वैराग्य शतक में कहा है

भोगो न भुक्ता वयमेव भुक्ताः तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः।
कालो न यातो वयमेव याताः तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः॥

भोग भुगतते हुए हम भोगासक्ति पूर्ण ना कर पाए परंतु हमारा आयुष्य भुगत गया। भोगासक्ति में तप नहीं कर पाए किन्तु आयुष्य नष्ट हो गया। काल तो नहीं बिता परंतु हमारी आयु बित गई, भोग भुगतते ईच्छाएँ पूर्ण ना हुई पर आयुष्य खत्म होकर शरीर पूर्ण हो गया।

ईश उपनिषद में कहा है –

तेन त्यक्तेन भुञ्जिथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्।

ईश्वर को निरन्तर स्मरण करते हुए ही तुम इस जगत् में ममता और आसक्ति का त्याग करके केवल कर्तव्य पालन के लिए ही विषयों का धर्मनीति अनुसार उपभोग करो अर्थात् विश्वरूप ईश्वर की आराधना के लिये ही कर्मो का आचरण करे।

विषयों में मन को मत फँसने दो, इसी में निश्चित कल्याण है। मनुष्य आवेश, आवेग से ममता, आसक्ति, भोगो में, मोह में, फँस कर पुनः पुनः जन्म मृत्यु के चक्र में अटका रहता है, इसलिए वैराग्यभाव धारण कर ईश्वर भक्ति, योग साधना, परमार्थ कर्म करते हुए कामना मुक्त जीवन जीना चाहिए।

भगवद् गीता में श्रीकृष्ण ने कहा है – धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि

मैं धर्म से विरुद्ध न हो ऐसा धर्ममान्य काम हुँ।

यह स्पष्ट करता है कि शास्त्रों में अर्थ पुरुषार्थ और काम पुरुषार्थ से पहले धर्म पुरुषार्थ का स्थान है जो कि धर्मानुसार अर्थ पुरुषार्थ और काम पुरुषार्थ का समर्थन करता है। मनुष्य को अपनी अज्ञानता का त्याग कर इन्द्रियों पर संयम कर धर्मानुसार काम का उपभोग करते हुए अपना जीवन बीताना चाहिए।

४) मोक्षः-

जीवात्मा को पंचतत्त्व और कर्मो के ऋणानुबंधन से एवं जन्म मृत्यु से मुक्त करने वाला पुरुषार्थ मोक्ष पुरुषार्थ है। शास्त्र कहते है मोक्ष विद्या ही ब्रह्मविद्या है। ब्रह्म को पाने की विद्या ही योगविद्या है। योग साधना से अपरोक्ष ज्ञान और सातत्यता पूर्वक ईश्वरमय बनकर मोक्ष प्राप्ति संभव बनती है।

योगी याज्ञवल्क्य ने कहा है –

श्रृणवन्तु विश्वेअमृतस्य पुत्राः
अयं तु परमो धर्म यद् योगेन आत्मदर्शनम्।

विश्व में निवास करनेवाले हे अमरो के पुत्रों सुनो ! योग द्वारा आत्म साक्षात्कार करना ही हमारा परम धर्म है।

सांख्य दर्शन में महर्षि कपील ने कहा है कि कैवल्य ही जीवन का परम लक्ष्य है।

प्रकृति के संसर्ग में आने पर जीव अपना स्व स्वरूप भूल जाता है, अहम् बुद्धि के आ जाने पर संसार को सत्य और ब्रह्म को मिथ्या मानने लगता है। मनुष्य को संसार के प्रति अनासक्ति भाव उत्पन्न कर मुमुक्षुभाव को धारण कर, स्व की खोज और स्व में स्थिति के लिए साधना करनी चाहिए। जिससे स्वानुभूति युक्त ज्ञान प्राप्ति होती है एवं पंचतत्त्व के बंधन और कर्म के ऋणानुं बंधन से जीतकर, ईश्वर शरणागति से ईश्वरानुग्रह प्राप्त होने पर जन्म, मृत्यु माया के बंधन से मोक्ष प्राप्ति होती है।

शंकराचार्यजी ने विवेक चूडामणि में कहा है –

जातिनीतिकुल गौत्रं दूरगं नामरूपगुणदोषवर्जितम्।
देशकालविषयातिवर्ति यद्ब्रह्म तत्वमसि भावयात्मनि ।।

जाति, नीति, कुल, गोत्र से परे नाम, रूप, गुण दोष से रहित जो देशकाल और विषयों से परे है और जिस में यद्ब्रह्म तत्वमसि यानी "जो ब्रह्म है, वही तुम हो " का भाव अपने भीतर लाओ।

मनुष्य को मोक्ष पुरुषार्थ करना ही चाहिए किन्तु मोक्ष पुरुषार्थ का पालन करना कठीन है, प्रत्येक मनुष्य को इसका अधिकार प्राप्त नहीं होता है। यदि ईश्वरानुग्रह से या गुरुकृपा से मोक्ष पुरुषार्थ का अधिकार मिल भी जाये तो एक ही जीवन में मोक्ष को प्राप्त कर लेना भी कठीन है,

गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है –

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान् माम् प्रपद्यते।

अनेक जन्मों के बाद किसी को सच्चा ज्ञान प्राप्त होता है,

जिसके लिए अनेक जन्मो तक इन्द्रिय संयम और त्यागभाव के साथ तप, साधना करनी पडती है। जब तक मनुष्य मोक्षपुरुषार्थ का अधिकारी नहीं बनता तब तक उसे धर्म पुरुषार्थ का पालन करते रहना चाहिए।

भगवान शिवजी का अठ्ठाईसवा अवतार भगवान लकुलीशजी

"**कायावरोहण**" तीर्थ भारत के उनसठ तीर्थो में से अति प्राचीन तीर्थ है। पुराणों में कायावरोहण तीर्थ की गिनती शैवतीर्थ एवं शक्तिपीठ के तौर पर की जाती है। यह महातीर्थ कायावरोहण पश्चिम भारत के भृगुक्षेत्र में नर्मदा नदी तट के नजदीक स्थित है। कायावरोहण तीर्थक्षेत्र भृगु, अत्रि, विश्वामित्र इत्यादि महान ऋषियों की पूण्यभूमि रही है। कायावरोहण तीर्थभूमि पर भगवान शिवजी ने मानवरूप में प्रकट होकर विश्व में सनातन संस्कृति तथा योग का प्रचार प्रसार किया था। शिवपुराण में "**कारवण महात्म्य**" नाम से अध्याय में वर्णन है की....

कृते इच्छापुरी नाम त्रेतायां च मायापुरी।
द्वापरे मेघावती नाम कलौ कायावरोहणम्।

इस तीर्थ का नाम सतयुग में इच्छापुरी, त्रेतायुग में मायापुरी, द्वापरयुग में मेघावती और कलियुग में कायावरोहण रहा है।

वर्तमान कलियुग की शुरूआत के संधिकाल में (द्वापर और कलियुग का संधिकाल) मेघावती तीर्थ में भगवान शिवजी ने लकुलीश के रूप में मानव काया में अवरोहण करके अवतार धारण किया इसलिए मेघावती तीर्थ कायावरोहण नाम से प्रसिद्ध हुआ।

कलिद्वापरयोर्मध्ये अवतारं मम श्रृणु।
यस्य स्मरण मात्रेण मुच्यते सर्वपातकैः।।

आज से करीब 5000 वर्ष पहले द्वापर और कलियुग के संधिकाल में अत्रिऋषि के वंश में विश्वरूप ब्राह्मण और उनकी धर्मपत्नी सुदर्शना के यहाँ चैत्र शुक्ल चर्तुदशी मध्यरात्री के बाद चैत्र शुक्ल पूर्णिमा की ब्रह्मबेला में एक बालक का जन्म हुआ। बालक के जन्म के थोड़े समय बाद विश्वरूप ब्राह्मण अक्षय पुण्य प्राप्त करने तीर्थ में जाने के लिये तैयार हुए। उन्होंने पत्नीसे कहा, "जिस तरह मैं नित्य होम करता हूँ उसी प्रकार मेरे तीर्थयात्रा पर जाने के बाद तू पड़ोस के ब्राह्मण द्वारा नित्य विधियुक्त होम करवाना।" इस तरह की सूचना देकर विश्वरूप यात्रा करने चले गए। सुदर्शना ने पहले दिन प्रातःकाल अपने पति के निर्देश अनुसार होम के लिये पूर्व तैयारी कर पड़ोशी ब्राह्मण को बुलाने गई। जब ब्राह्मण को लेकर वह यज्ञशाला में आयी तब उसने देखा कि यज्ञकुंड में अग्नि प्रज्वलित है और होम सामग्री का उपयोग हो गया था। वह सोचने लगी कि घर पर बालक के सिवा कोई नहीं था तो यज्ञ किसने किया?! दूसरे दिन भी इसी तरह होम हो गया था। इस प्रकार जब तक सुदर्शना का पति विश्वरूप वापस न आए तब तक नित्य प्रातः होम हो जाता। जब विश्वरूप तीर्थयात्रा से वापस आए तब सुदर्शना ने बताया कि आपकी सूचनानुसार होम हो जाता किन्तु उस में एक अगम्य घटना घटीत होती थी। सुदर्शना ने संपूर्ण घटना विश्वरूप को बताई। घटना सुनकर विश्वरूप को भी आश्चर्य हुआ। विश्वरूप ने सुदर्शना से कहा कि कल भी तू मेरी अनुपस्थिति हो उसी

प्रकार सब तैयारी करके फिर पड़ोस के ब्राह्मण को बुलाने के लिये जाना। मैं घर में छिपकर ध्यान रखूँगा। दूसरे दिन सुदर्शना सब तैयारी करके ब्राह्मण को बुलाने के लिये गई, उतने में ही पालने में सोया हुआ छः महीने के बालक ने आकर सभी होम विधि पूरी की। वह बालक अपने पालने में वापस जा रहा था उस समय विश्वरूप ने पुत्र से पूछा कि "होम किस प्रकार करना है तू कैसे जानता है ?" तू कोन है ? यह सब सुनते ही पुत्र को मूर्छा आ गई और थोड़ी देर में उस बालक की मृत्यु हो गई। माता पिता ने उस मृत बालक के शरीर को दुःखी मन से "देवखात" नामक तालाब में बहा दिया। एक बड़ा कछुआ उस मृतदेह को तालाब के तल तक खींचकर ले गया, जहाँ भगवान शंकर का जलेश्वर नाम का लिंग था। उस लिंग का स्पर्श होते ही बालक का देह सजीवन हो गया और वह बालक पानी के उपर आ गया। बालक को पानी के उपर देखकर उसके माता पिता सहित उपस्थित सभी आनंदित हो गये। इतने में ही दूसरा चमत्कार हुआ कि वह बालक युवान बन गया और जल की सतह पर चलने लगा। सब उस बालक के पास जाकर पूछने लगे कि तू जीवित किस तरह हुआ ? उस बालक के पिताने पूछा कि "आप कौन हो ?" बालक ने जवाब दिया "मैं प्राण स्वरुप हूँ। मैं शिव हूँ।" उनके हाथ में "लकुट" (दंड) था। इसलिए उनको भगवान लकुलीश कहकर सब उनकी स्तुति करने लगे। मानव काया में अवरोहण करने के कारण उस नगरी का नाम "कायावरोहण" पड़ा। "कायावरोहण" का अर्थ होता है काया में अवरोहण (उतरना, प्रवेश) करना।

लकुलीश शब्द संस्कृत भाषा के शब्द **"लगुड" अथवा "लकुट"** पर से आया है।

लकुट + ईश = "लकुलीश" अर्थात् दंड धारण किये हुए ईश्वर।

भगवान लकुलीशजी ने कुशिक, मित्र, गर्ग और कारुष्य नाम के चार शिष्यो को दीक्षा दी। भगवान लकुलीशजी ने **अपने चारो शिष्यों को सनातन संस्कृति और योग का प्रसार करने चारो दिशाओं में भेजा। कुशिक को मध्य भारत, गर्ग को पूर्व भारत में, कारुष्य को दक्षिण भारत में और मित्र को पश्चिम भारत में भेजा। चारो शिष्यों ने भारत में जगह जगह मठ की स्थापना की, मंदिरों का निर्माण किया, योगविद्या का प्रचार प्रसार किया।**

भगवान लकुलीशजी के समय में कायावरोहण भारतवर्ष का संस्कृति, ज्ञान, भक्ति और योग का महाकेन्द्र था। अनेक राजा महाराजा लकुलीशजी के चरणों में नतमस्तक रहते थे। यहाँ बड़े-बड़े मंदिर, यज्ञशालाएँ, गौ-शालाएँ, शिक्षा केन्द्रों, धर्मशालाएँ और तपोवन थे। भारत में आये हुए द्वादश ज्योतिर्लिंगो का संचालन भी दीर्घकाल तक कायावरोहण से ही होता रहा था।

वर्तमानकाल में पूज्य प्रितम मुनिजी ने भगवान लकुलीशजी के आदेश शिव संकल्प "विश्व में सनातन संस्कृति पुनरुत्थान" हेतु कायावरोहण में "लकुलीशधाम" नाम से

मुख्यालय की स्थापना की और अपने शिष्यों की चार मंडली की रचना करके लकुलीशधाम, कायावरोहण से चार दिशाओं में धर्म, ज्ञान, भक्ति, योग, सनातन संस्कृति प्रचार प्रसार के लिये भेजा। वर्तमान में भगवान लकुलीशजी के शिव संकल्प को साकार करने पूज्य प्रितम मुनिजी के शिष्योंकी चार मंडलियाँ क्रमशः **पश्चिम में** कायावरोहण से पश्चिम भारत, उत्तर अमरीका और दक्षिण अमरीका, **उत्तर में** हरिद्वार से उत्तर भारत और युरोपियन देश, उत्तर ऐशिया। **पूर्व में** काशी से पूर्व भारत और पूर्व-दक्षिण एशिया और ओस्ट्रेलियन देश, **दक्षिण में** बेंग्लोर दक्षिण भारत, आफ्रिकन देश, मध्य पूर्व एशिया कार्यक्षेत्र की जिम्मेवारी सोंप कर सनातन संस्कृति प्रसार द्वारा विश्व में शांति, नीति, एकता स्थापित हो और जीवों का आध्यात्मिक उत्थान हो ऐसा प्रयत्न कर रहे है।

प्रितम मुनिजी ने कायावरोहण से भगवान लकुलीशजी के शिव संकल्प "विश्व में सनातन संस्कृति पुनरुत्थान" का मुख्यालय निर्माण करने "लकुलीशधाम" की स्थापना कर योग, यज्ञ, देव पूजन, संध्या और आध्यात्म विद्याओं का प्रशिक्षण और जरुरतमंद की सेवा का आयोजन किया। लकुलीश सनातन संस्कृति विद्यापीठ द्वारा शिक्षा आयोजन, लकुलीश तपोवन द्वारा आध्यात्मिक साधको को आवश्यक व्यवस्था प्रदान करना, लकुलीश गौ शाला, लकुलीश धर्मशाला, यज्ञशालाएँ और यज्ञ, योग, देवपूजन, संध्याकर्म के प्रशिक्षण केन्द्रों के साथ अनेक विध सेवाकीय प्रवृत्तियों का आयोजन किया।

ध्यान दे - भगवान लकुलीशजी के चार शिष्य कुशिक, मित्र, गर्ग और कारुष्य के बारे में विभिन्न शास्त्रों में जैसे कि पुराण, दर्शन, अभिलेख, शिलालेख में अलग अलग नामों का उल्लेख मिलता है **जैसे की... कुशिक का कौशिक, मित्र का मैत्र्य, कारुष्य का रुष्य, रुष्ठ, कौरुष्य तथा गर्ग का गार्ग्य आदि...**

ब्रह्मर्षि विश्वामित्रजी द्वारा स्थापित ब्रह्मेश्वर योग मंदिर कायावरोहण (गुजरात का काशी)

कायावरोहण तीर्थ का मुख्य मंदिर "ब्रह्मेश्वरजी" का शिवालय है। ब्रह्मर्षि विश्वामित्रने स्वयं उल्कापिंड से निर्मित वह शिवलिंग स्थापित किया था तथा भगवान शिवजी ने प्रसन्न होकर वहाँ ज्योतिर्लिंग में स्थित होने का वरदान दिया था। द्वापर युग और कलियुग के संधिकाल में अवतरित हुए शिवावतार भगवान लकुलीशजी का कार्य संपन्न होते ही उन्हों ने चारों दिशाओं से चारो शिष्यों को कायावरोहण बुलाया और अंतिम उपदेश दिया कि **"आपकी आध्यात्मिक यात्रा आगे बढ़ाना, भक्ति करते हुए सदाचरण पूर्ण जीवन व्यतीत करना और पवित्र सनातन संस्कृति का प्रसार करते रहना। जब तक आप**

इस कर्तव्य में लगे हुए रहेंगे तब तक मैं आपके अंतःकरण से विमुख नहीं होऊगा।" चारों शिष्यों ने प्रणाम किया। लकुलीशजी ध्यानस्थ बने, थोड़ी क्षणों में उनका स्थूल शरीर तेजोमय बन गया और ज्योतिरूप से समीप के ब्रह्मेश्वरजी के ज्योतिर्लिंग में विलिन हो गया तथा दूसरे ही क्षण ब्रह्मेश्वरजी के ज्योतिर्लिंग के अग्रभाग में भगवान लकुलीशजी की मूर्ति उभर आयी। विश्वामित्र मुनि द्वारा स्थापित शिवलिंग में स्थित मूर्ति शांभवी मुद्रा में बैठे हुए लकुलीशजी की है। उनके बाँये हाथ में दंड (लकुट) और दाहिने हाथ में फल (बीजाफल) है।

सर्वपाप हरम् पुण्यम श्रीमत कायावरोहणम् ।
कायावरोहणे तीर्थे मूर्तिमान शंकरः स्वयम्।

सर्वपापों को हरने वाला, पुण्य को देने वाला ऐसा कायावरोहण तीर्थ है जहाँ मूर्ति स्वरूप में स्वयं शिव विराजमान है।

ब्रह्मर्षि विश्वामित्र की मेघावती नगरी में शिवलिंग की स्थापना के बाद द्वापर और कलियुग के संधिकाल में अवतरित शिवावतार भगवान लकुलीशजी ने विश्वामित्र मुनि द्वारा स्थापित शिवलिंग में समाहित होकर शिवलिंग में स्वयंभू साकार रूप से स्थित हुए। वह ब्रह्मेश्वरजी शिवलिंग सहस्त्रों वर्षो से कायावरोहण तीर्थ में पूजित है।

भगवान लकुलीशजी ने स्वयं पूजारी को आदेश देकर ब्रह्मेश्वर लिंग को ई.स 1026 में भूगर्भवास करवाया। ब्रह्मेश्वर शिवलिंग के भूगर्भवास के पूरे आठसौ चालीस वर्ष बाद दिनांक 24 मई 1866 के संवत्सर 1922 को जयेष्ठा शुक्ल दशमी और गुरुवार के दिन उनका पुनः प्रागट्य हुआ। ई.स 1866 में भूगर्भवास से प्रागट्य होने के बाद ग्रामजनो द्वारा नवनिर्मित शिवालय में स्थापित वह शिवलिंग "राजराजेश्वर महादेव" नाम से प्रसिद्ध हुआ। सन् 1956 में कृपालु मुनि को भगवान लकुलीशजी और विश्वामित्र मुनि ने दर्शन दिए। **भगवान लकुलीशजी ने कृपालु मुनि को "कायावरोहण तीर्थ का पुनरुद्धार" और "सनातन संस्कृति पुनरुत्थान" का आदेश दिया।** पूज्य कृपालु मुनिजी की प्रेरणा और मार्गदर्शन अनुसार नवनिर्मित शिवालय में सन् 1974 में वह शिवलिंग "ब्रह्मेश्वर" नाम से स्थापित किया गया। शिवावतार भगवान लकुलीशजी जिस में स्वयं स्थित हुए हो ऐसा यह शिवलिंग वर्तमान में भारत देश के गुजरात राज्य के वडोदरा शहेर के निकट कायावरोहण तीर्थ में "ब्रह्मेश्वर योग मंदिर" में "ब्रह्मेश्वर" नाम से प्रसिद्ध है। ब्रह्मेश्वर स्वरूप से शिवावतार भगवान लकुलीशजी की उपस्थिति से कायावरोहण को गुजरात का काशी कहा जाता है।

सभी आत्मीयजनो को शिवक्षेत्र कायावरोहण में "ब्रह्मेश्वर" शिवलिंग" में स्थित भगवान लकुलीशजी के दर्शन के लिए हार्दिक आमंत्रण है।

"लकुलीश जी" मूर्ति स्वरुप वर्णन

लकुलीश के कार्यकाल की समाप्ति पर वह ब्रह्मेश्वर लिंग में योगमुद्रा में अंतस्थ हो गये। "**लयंगतः**" का अर्थ आत्मभाव हो जाने से। यह मुद्रा का वर्णन पाशुपत योग में हुआ है। पंचार्थ भाष्य में विवेचित रुद्र सायुज्यता की स्थिति "**लयंगतः**" जैसी स्थिति की सूचक है। लकुलीश के बाँये हाथ में बीजापूरक स्थित है। जिसकी व्याख्या मातुलिंग के रुप में कि गई है। जिसका सम्बन्ध पाणिलिंग से माना जाता है। जो योगीश (हडप्पा सभ्यता के उर्ध्वलिंगी योगी जो योगीश के नाम से इतिहास में उल्लेखित है।)के दाहिने हाथ में रहता था। **आगम परंपरा में गुरु स्वरूप महेश्वर के दीक्षाकाल में मंत्रसहित पाणिलिंग धारण करने का उल्लेख है।** बाँये हाथ में दंड तथा दाहिने हाथ में मातुलिंगधारी, योगमुद्रालय लकुलीशजी पद्मासनस्थ तथा उर्ध्वमेढ्र अथवा उर्ध्वलिंग उनकी मूर्ति की विशेषता है।

न(ल)कुलीशमूर्ध्वमेढ्र पद्मासनसुसंस्थितम् ।
दक्षिणे मातुलिग्ङं च वामे दण्डं प्रकीर्तितम् ।।

(विश्वकर्मावतार-वास्तुशास्त्र)

लकुलीशजी के इस स्वरुप की प्रतिमाएँ मथुरा में यमुना तट के स्वामी घाट के डूम्मारा, लेन केव इलोरा, एलिफन्टा, कायावरोहण, लिंगस्थली, कनिका तीर्थ मंदिर भरुच, माउन्ट आबु के अचलेश्वर में, वडोदरा में विश्वामित्री के तट पर, इन्दोर से चतुर्भूजी प्रतिमाएँ प्राप्त हुई है। इसी प्रकार गुजरात, सौराष्ट्र, अजमेर, मैसूर, प्रभास पाटण और ओरिस्सा के अनेको मंदिरों से लकुलीशजी की पूर्व विवेचन वाली प्रतिमाएँ प्राप्त हुई है। इसके उपरांत बिहार से, रोहतक में मुन्डेश्वरी से, सिंहभूमि बेनीसागर से प्राप्त लकुलीशजी की प्रतिमाएँ अत्यंत महत्वपूर्ण है।

ऋषियों द्वारा लकुलीशजी की पुराणोक्त वंदना

ऋषयः ऊचुः

नमो बालकरुपाय अव्यक्ताय नमोनमः।
व्योमप्रमाणकायाय कामेशायनमोनमः।।
व्योमप्रमाणविद्याय विधेशाय नमोनमः।
व्योमप्रमाणकालाय कालेशाय नमोनमः।।
व्योमप्रमाणधर्माय धर्मेशाय नमोनमः।।
एकवज्रद्विवज्राय बहुवज्राय ते नमः।
एक कण्ठद्विकण्ठाय बहुकण्ठाय ते नमः।।
एकहस्तद्विहस्ताय बहुहस्ताय ते नमः।

एकनेत्रद्विनेत्राय बहुनेत्राय ते नमः।।
नमस्तेऽसतु महादेव नमस्तेऽसतु महेश्वर ।
नमस्तेऽसतु महारुद्र नमस्ते बालरुपिणे।।
नमस्तेऽसतु महासिद्ध देवखातसमुद्भव।
नमस्तेऽसतु महारुद्र नमस्तेऽसतु सदा हरे।।
अव्यक्ताय नमस्तुभ्यं शाश्वताय च ते नमः।
एवं स्तवेन देवेशं स्तौति यो लकुडेश्वरम् ।।
भोगार्थी लभते भोगान् योगार्थी योगमाप्नुयात् ।।
यं यं चिन्तयेते कामं तं तं प्राप्नोति सत्वरम् ।।
शिवस्य पद्माप्नोति नित्यं पठति यो नरः।।

(इति श्रीशिवपुराणे लकुलीशमाहात्म्ये तृतीयोऽध्यायः)

भगवान शिवजी के अठ्ठाईस अवतारों का वर्णन

श्वेतः सुतारो दमनः सुगोत्रः कङक एव च।
लोकाक्षिजैगीषव्यौ च तथैव दधिवाहनः ।।
ऋषभो मुनिरुग्रश्च चित्रार्थालिश्च गौतमः।
वेदशिरा गोकर्णश्च गुहावासिशिखण्डिनौ।।
जटामाली चाट्टहासो दारुको लाङगली तथा।
श्वेतः शूल्यथ दण्डी च सहिष्णुः सोमशर्मकः।।
लकुलीशश्चावतार अष्टाविंशतिसङख्यकाः।

भगवान शिवजी के श्वेत, सुतर, दमन, सुगोत्र, कंक, लोकाक्षि, महामाया, जैगीषव्य, दधिवाहन, ऋषभ, उग्र, अत्रि, सुबालक, गौतम, वेदशिरा, गोकर्ण, गुहावासी, जटामाली, शिखंडी, अट्टहास, दारुक, लांगली, महाकाल, शूल्य, दंडीमुंडीश, सहिष्णु, सोमशर्मा, लकुलीश अठ्ठाईस अवतार है।

शिवावतार भगवान लकुलीशजी के शिष्य पूज्य प्रितम मुनिजी

योगिनामपि सर्वेषा मद्गतेनान्तरात्मना।
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः।।

संपूर्ण योगियों में भी जो श्रद्धावान् भक्त मुझ में तल्लीन हुए मन से मेरा भजन करता है, वह मेरे मत से सर्वश्रेष्ठ योगी है।

भारत भूमि में युगों – युगों से अनेक संत, महात्मा, योगीपुरुष अवतरित होते रहें है और

समाज को सत्य, धर्म एवं योगपथ पर आगे बढ़ाने हेतु मार्गदर्शन करते रहें है। 14 फरवरी 1977 में माघ मास की कृष्ण एकादशी और सोमवार को सुबह 6:00 बजे गुजरात के अंतर्गत सरसण गाँव में अवतरित हुए पूर्व जन्म के योगी ऐसे पूज्य प्रितम मुनिजी बचपन से ही धर्म, कर्म, संस्कृति और योग-ज्ञान की निधि प्राप्त किये हुए है। उम्र बढ़ने के साथ उनमें ज्ञान और साधना स्वयं विकसित होने लगे। बचपन से ही उन्हों ने तय कर लिया था कि मुझे संन्यासी बनकर योगसाधना के साथ सनातन संस्कृति प्रसार करना है।

उन्होंने प्रथम बार 1989 में गृहत्याग किया और एक रात्रि देवीमाँ के मंदिर में भावमय ध्यानावस्था में अकेले बैठे रहें। उस रात्रि उनको दो प्रकाशित शरीरधारी योगीयों ने दर्शन दिये। दोंनो ने परस्पर कुछ चर्चा की और बाद में एक पतली और लंबी काया वाले तेजस्वी योगी ने उनकी जिम्मेदारी स्वीकार की और दोंनो आर्शीवाद देकर अंर्तध्यान हो गये। इसके बाद उनके जीवन में अदृश्य मार्गदर्शन, सहयोग और संरक्षण का अनुभव होता रहा। उन्होंने अपने जीवन में घट रही दैवी घटनाओं के बारे में मौन रहना पसंद किया। फरवरी 1993 में पुन: गृहत्याग कर वह गिरनार पर्वत की ओर चले गये। वहाँ से वापस लौटकर उन्होंने "सनातन संस्कृति पुनरुत्थान" के विश्व व्यापी कार्य को ध्यान में रखकर निवृत्ती-प्रवृत्ती पक्ष की दीक्षा, साधना एवं सनातन संस्कृति पुनरुत्थान का वैश्विक कार्य करने की पूर्ण योजनाओं को शब्दस्थ किया।

उन्होंने करीब 16 वर्ष की आयु में अपने जीवन के कार्य को लगभग 100 पृष्ठो में लिपिबद्ध किया। जिस में कार्य का उद्देश्य - विश्व में सनातन संस्कृति पुनरुत्थान। कार्यकर्ताओं को निवृत्ति पक्ष (साधु) और प्रवृत्ति पक्ष (गृहस्थी) क्रमशः दीक्षा विधियाँ, साधना प्रशिक्षण, कार्य की जिम्मेदारियाँ लिपिबद्ध की। जीवसृष्टि और प्रकृति के संवर्धन, संरक्षण का आयोजन निर्णित किया। भौतिक विद्या, मनोविज्ञान और अध्यात्म विज्ञान के सामान्य, मध्यम और उत्तम मुमुक्षुओ के लिए उस प्रकार के साहित्य और प्रशिक्षण व्यवस्था का आयोजन निश्चित किया। विश्व में सदीयों - सहस्त्रों वर्षो तक सनातन संस्कृति कार्य संचालित होता रहे ऐसे संस्थानो की व्यवस्था कर विश्व में शांति, नीति, एकता और धर्म स्थापना का कार्य करने आवश्यक अनेक कार्यो का आयोजन विस्तार से लिपिबद्ध किया। उनकी भौतिक शिक्षा में आगे बढ़ने की इच्छा नहीं थी। किंतु माता-पिता की इच्छा के कारण उन्होंने विज्ञान शाखा में स्नातक की पदवी प्राप्त की और साथ में ही शास्त्र अध्ययन भी किया। उन्होंने हिमालय, गिरनार, आबु इत्यादि पर्वतों की और गंगा, यमुना, तापी, मही, नर्मदा, इत्यादि नदियों के तटवर्ती कुछ स्थानों की यात्रा की। उनके गुरु भगवान शिवजी के

परम अनुग्रह से उनको समय-समय पर प्रेरणा, मार्गदर्शन और संरक्षण प्राप्त होता रहा। ई.स १९८९ में उन्होंने प्रथम बार गृहत्याग किया और वापस आने के बाद स्कूली अभ्यास के साथ साथ स्वाध्याय भी बढ़ता रहा। उन्होंने उस समय वेद, भगवद् गीता, श्रीमद भागवत, महाभारत, रामायण, पुराणो, योगग्रंथो, तंत्रमंत्र ग्रंथो, रसविद्या, आयुर्वेद, ज्योतिष, वास्तु, कर्मकांड शास्त्र, दर्शन शास्त्र, इतिहास, विज्ञान, टेकनोलोजी का गहन अध्ययन किया। इसके साथ ही उन्होंने युवाकाल की शुरुआत में ही बिध बिध भोजन बनाना, खेतीकार्य, चित्रकला, संगीत, गायन, वादन, नृत्य, शस्त्रविद्या, काव्यरचना, गौ दूग्ध दूहना, आर्किटेक, चिनाई काम, वक्तव्य कला ईत्यादि सीख लिया। राज काज संचालन उनमें बालपन से सहज विकसित था। स्वयं सरल होने के बावजूद उत्तम अनुशासक के गुण धारण किये हुए शांत स्वभाव के स्नेहवान होने के उपरांत सुख दुःख भावना के व्यवहार से मुक्त थे। इस प्रकार वो बालपन से ही संन्यासी बन विश्व में सनातन संस्कृति प्रसार के लिए आयोजन बद्ध तैयारी करने लगे थे। युवावस्था में "प्राणविद्या" का नित्य तकरीबन 10 घंटे अभ्यास किया करते थे। योग शास्त्रों में वर्णित क्षमताएँ, परिणाम उनमें पूर्वाश्रम से ही विकसित होने लगे थे। उन्होंने प्रभुप्रेम की लगन से संन्यस्त हेतु परिवारजनो की सहमति और आशीर्वाद के साथ 27 नवम्बर 2003 के दिन गृहत्याग किया। उन्हें भगवान शिवजी के 28 वें अवतार लकुलीशजी के शिष्य पूज्य कृपालु मुनिजी (बापुजी) के शिष्य पूज्य सुचरीत मुनिजी और पूज्य राजर्षि मुनिजी के द्वारा क्रमशः दिनांक 16 फरवरी 2004 और 27 फरवरी 2009 को संन्यस्त दीक्षा की प्राप्ति हुई।

पूज्य प्रितम मुनिजी संन्यास दीक्षा के उपरान्त मसूरी के पास हिमालय की पहाड़ी, नमर्दा तटवर्ती कंजेठा गाँव स्थित आश्रम और देहरादून के निकटवर्ती आश्रम में एकान्तवास व योग साधना में पांच वर्ष (फरवरी 2004 से मई 2009) तक साधनारत रहे। जनवरी 2007 की एक शाम को करीब 5:30 बजे में उनके गुरु **भगवान लकुलीशजी ने उनको ध्यानावस्था में दर्शन दिये। भगवान लकुलीशजी शिवजी के अट्ठाईसवे योगीश्वर अवतार है। पूज्य प्रितम मुनिजी ने भगवान लकुलीशजी को "विश्व में सनातन संस्कृति पुनरुत्थान" कार्य को विश्वव्यापी बनाने का वचन दिया।**

27 मई 2009 को अपने सभी आत्मीयजनों को प्रेम और आशीर्वाद देकर अपने गुरु भगवान शिवजी का आदेश न मिलने तक पुनः मानव बस्ती में न आने के निर्णय के साथ हिमालय के ऊपरी पर्वतों में चले गये। जुलाई 2009 में हिमालय से वापस आने पर भगवान "लकुलीशजी" की गुरु परम्परा के आध्यात्मिक गुरु पूज्य श्री राजर्षि मुनिजी ने "भगवान

लकुलीशजी" से प्राप्त हुए आध्यात्मिक दीक्षाओं के अधिकार पूज्य प्रितम मुनिजी को प्रदान किए और "भगवान लकुलीशजी" ने सनातन संस्कृति पुनरुत्थान का कार्य सन् 1956 में पूज्य कृपालु मुनिजी को और 1993 में स्वयं को (पूज्य राजर्षि मुनिजी को) सौंपा था उसे आगे बढ़ाने का आदेश दिया। इस तरह जनवरी 2007 में "भगवान लकुलीशजी" के ध्यानावस्था में दर्शन से परोक्षरूप से मिला हुआ आदेश करीबन ढाई साल की अवधि में प्रत्यक्ष रुप से पूर्ण हुआ। पूज्य प्रितम मुनिजी ने "भगवान लकुलीशजी" के अनुग्रह से पृथ्वी पटल पर सनातन संस्कृति पुनरुत्थान कार्य का विस्तार करने को अपना जीवन कार्य और पूर्णयोग साधना अर्थात पंचतत्वो के बंधनों से मुक्त कर त्रिकालज्ञ अजर-अमर बनाने वाली पूर्णयोग की साधना को जीवन साधना बना लिया। उन्होंने भारत के 22 राज्यों में और मोरिशियस, न्यूजीलैंन्ड, ऑस्ट्रेलिया, ईग्लेंड, यु.ए.ई., नेपाल देशो में यात्रा कर "सनातन संस्कृति पुनरुत्थान" के लिए अथक प्रयत्न किया।

पूज्य प्रितम मुनिज ने "भगवान लकुलीशजी" के शिव संकल्प "सनातन संस्कृति पुनरुत्थान" को विश्व व्यापी बनाने के लिए सितम्बर 2010 में भारत देश की राजधानी दिल्ली से "लकुलीश सनातन संस्कृति प्रबोधन" नाम से संस्था का गठन किया और भारत देश के गुजरात राज्य के वडोदरा ज़िला के अंतर्गत सिद्धक्षेत्र कायावरोहण में "लकुलीशधाम" नाम से मुख्यालय की स्थापना की। जहाँ से विश्व के 240 देशो में सनातन संस्कृति पुनरुत्थान कार्य के विस्तार का 1100 वर्ष (वर्ष 2013 से 3113) का आयोजन किया गया। पूज्य प्रितम मुनिजी कहते है, "धर्मविद्या, अध्यात्मविद्या केवल बाते, कथावार्ता या कर्मकांड का विषय नहीं किंतु आचरण में लाने और धारण करने की विद्या है। योगविद्या अध्यात्म विज्ञान की प्रयोगात्मक सनातन विद्या है जो जीव को शिव रूप बनाती है, जीव को जन्म मृत्यु के बन्धन से मुक्त कर त्रिकालज्ञ, अजर-अमर, दिव्य शरीरी बनाने वाली विद्या है।"

पूज्य प्रितम मुनिजी के जीवनकार्य को थोड़े शब्दो में व्यक्त करें तो निष्काम प्रभु प्रेम, जरुररमंद की सेवा, पृथ्वी पटल पर सनातन संस्कृति पुनरुत्थान का विश्वव्यापी नेतृत्व और जरा, रोग, मृत्यु, रहित दिव्यदेह प्राप्त कराने वाली योग साधना।

भगवान लकुलीशजी की आरती

जय जय लकुलीश बोलो जय जय लकुलीश
लकुलीश आते है संस्कृति सिखाते है,
साढे तीन अक्षर के शिष्य साथ लाते है,
कर्म–ज्ञान–भक्ति–योग विश्‍व में फैलाते है,
सनातन संस्कृति विश्‍व में फैलाते है
संस्कृति के रक्षक देव जय जय लकुलीश.० जय जय..

कलीयुग में आते है योग वे सिखाते है,
दिव्यदेह देनहार प्रभु निरा निराले है,
योगीश्वर प्यारे प्रभु सब से वो न्यारे है,
कृपानिधान प्रभु भक्तो के रखवाले है,
संस्कृति के रक्षक देव जय जय लकुलीश.० जय जय..

प्रभुप्रेम, दीनसेवा, पूर्णयोग साधना,
लकुलीश शिष्य मुनि प्रितम सिखाते है,
दुःखियों के दुःखहारी भोलेनाथ प्यारे है,
गाँव गाँव शिवलिंग में पूजा वो पाते है,
संस्कृति के रक्षक देव जय जय लकुलीश.० जय जय..

संस्कृति प्रबोधक संकल्प

संस्कृति प्रबोधक हम है संस्कृति प्रबोधक
संस्कृति प्रबोधक प्रितम प्यारे संस्कृति प्रबोधक
संस्कृति प्रबोधक बढ़ो रे आगे संस्कृति प्रबोधक
वक्त की पुकार है
लकुलीश आदेश है
पृथ्वीपटल पर करेगें हम संस्कृति पुनरुत्थान
संस्कृति पुनरुत्थान करेगें हम संस्कृति पुनरुत्थान
गाँव गाँव में जायेगें
शिव संकल्प सुनायेगें
खुद समझेगें समझायेगें कर्म भक्ति योग ज्ञान
कर्म भक्ति योग ज्ञान प्रबोधक कर्म भक्ति योग ज्ञान
नैतिकता से नींव भरेगें
सात्विकता के स्तंभ रचेगें
आध्यात्मिकता के शिखर चढ़ेगें मुनि प्रितम के संग
मुनि प्रितम के संग प्रबोधक मुनि प्रितम के संग
लकुलीश के बालक हम
संस्कृति के वाहक हम
संस्कृति संरक्षक हम
संस्कृति प्रबोधक हम
इतिहास नया बनायेगें विश्व में फैलायेगें
शांति नीति और धर्म, प्रबोधक शांति नीति और धर्म
संस्कृति प्रबोधक हम है संस्कृति प्रबोधक
संस्कृति प्रबोधक बढ़ोरे आगे संस्कृति प्रबोधक

क्रम	चक्र का नाम	चक्र	तत्त्व	तत्त्वबीज	तत्त्वगुण	ज्ञानेन्द्रिय	तत्त्वरंग	यंत्र	पंखुडी	स्थान	अक्षर
१	मूलाधार चक्र	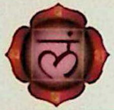	पृथ्वी	लं	गंध	नासिका	पीला	चतुष्कोण	४	सीवनी	वं से सं
२	स्वाधिष्ठान चक्र		जल	वं	रस	जिह्वा	शुभ्र	अर्ध चंद्राकार	६	उपस्थ	बं से लं
३	मणिपुर चक्र		अग्नि	रं	रुप	आंख	रक्त	त्रिकोण	१०	नाभि	डं से फं
४	अनाहत चक्र		वायु	यं	स्पर्श	त्वचा	धुम्र	षट्कोण	१२	हृदय	कं से ठं
५	विशुद्धाख्य चक्र		आकाश	हं	शब्द	कर्ण	नील	वृत्ताकार	१६	कंठ	अ से अः
६	आज्ञा चक्र	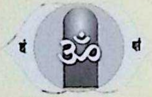	तत्त्वातीत	ॐ	संकल्प	मन	रुपातीत	लिंगाकार	२	भ्रूमध्य	हं से क्षं
७	सहस्त्रार चक्र		तत्त्वातीत	ॐ	गुणातीत	प्राण/आत्मा	रुपातीत	बिन्दुयुक्त	१०००	मूर्धा	अ से क्ष

धर्मविद्या, अध्यात्मविद्या सिर्फ चर्चा, कथावार्ता या कर्मकांड का विषय नहीं है, परंतु आचरण में लाने और धारण करने की विद्या है। जो जिव को सीमित से असीमतता में स्थित करती है। जिव को शिवरुप बनाती है। जिव को जन्म मृत्यु के बंधन से मुक्त कर त्रिकालज्ञ, अजर-अमर, दिव्य शरीरी बनानेवाली विद्या है।

पहेलवानी की किताबे पढ़कर, पहेलवान बनने हेतु प्रवचन करने से अथवा पहेलवान के प्रवचन सूनने मात्र से कोइ पहेलवान नहीं बन सकता। उचित खानपान के साथ अभ्यास करने से पहेलवान बन सकते है। उसी प्रकार अध्यात्म विद्या के प्रवचन सूनकर, किताबे पढ़कर समजदार बना जा सकता है परंतु अध्यात्मविद्या को अपनी स्वानुभूति से धारण करने हेतु योग साधना करनी पडती है।

– प्रितम मुनि

लकुलीश सनातन संस्कृति प्रबोधन अभियान
लकुलीशधाम, प्रितमपुरम, कायावरोहण, वडोदरा, गुजरात